प्रकाशक—
भारती-भण्डार
बनारस सिटी

तृतीय संस्करण
मूल्य १)

मुद्रक—
[illegible]
[illegible]

प्राक्कथन

'अजातशत्रु' के लेखक—जिनसे हिन्दी पाठक खूब अच्छी तरह परिचित हैं—हिन्दी के उन इने गिने लेखकों में से हैं जिन्होंने मातृ-भाषा में मौलिकता का आरम्भ किया है। उनकी कृतियाँ मौलिक हैं; यही नहीं, वे महत्वपूर्ण भी हैं।

यों तो उनकी रचना और शैली में सभी जगह उत्कृष्टता है; पर उनके नाटक तो हिन्दी-संसार में एक दम नई चीज़ हैं। वे आज की नहीं, आगामी कल की चीज़ हैं। वे हिन्दी-साहित्य में एक नए युग के विधायक हैं। न विचारों के ख़याल से, न कथानक के ख़याल से, न लक्ष्य के ख़याल से आज तक हिन्दी में इस प्रकार की रचना हुई है, न अभी होती ही दीख पड़ती है।

हाँ, वह समय दूर नहीं है जब 'विशाख' और 'अजातशत्रु' के आदर्श पर हिन्दी में धड़ाधड़ नाटक निकलने लगेंगे। परन्तु वे अनुकरण मात्र होंगे। 'प्रसाद' जी की कृतियों के निरालेपन पर उनका कोई असर न पड़ेगा।

सम्भव है कि हमारा कथन बहुतों को व्याजस्तुति मात्र जान पड़े, पर समय इन पंक्तियों की सत्यता साबित करेगा। अस्तु, हम प्रकृत विषय से अलग हुए जा रहे हैं—

[illegible]

[illegible] "[illegible]" [illegible]

[illegible]

[illegible]

आश्चर्य ही का उद्दीपन करेगा। वह, प्रबल प्रतिघात तथा वृत्तियों को विपरीत धक्के खिलाकर उत्तेजित करके अथवा, बलवती वासनाओं को दुर्दान्त मानवरूप में अति चित्रण करके समाज में कुतूहल उपजावेगा। उसकी चंचलता बढ़ावेगा और उसमें क्रान्ति करा देगा। ऐसे ही नाटक चाहे वे रचना में प्रसादान्त क्यों न हों, मानवता के लिए, परिणाम में विषादान्त होते हैं।

किन्तु जहाँ वासनाओं का चरित्र के साथ उत्थान और पतन तथा संघर्ष होगा, साथ ही उत्कट वासनाओं का आरम्भ होकर शान्त हृदय में अवसान होगा, वह नाटक मरणान्त भले ही हो किन्तु है मानवता के लिए प्रसादान्त। 'प्रसाद' जी के नाटकों में एक यह भी मुख्य विशेषता है।

'अजातशत्रु' का अन्तिम दृश्य इसका प्रस्तुत प्रमाण है। यद्यपि अंत में बिम्बसार का लड़खड़ाना यवनिकापतन के साथ उसके मरण का द्योतक है। किन्तु, जिन वाक्यों को कहता हुआ वह लड़खड़ाता है वह वाक्य तथा उसी क्षण भगवान् गौतम का प्रवेश, बिम्बसार के हृदय की, तथा उस अवसर की पूर्ण शान्तिका सूचक है।

हाँ, 'प्रसाद' जी के नाटक ऐसे ही हैं। वे न तो केवल अन्तर्द्वन्द्व को लेकर मर्त्यलोक में, चतुर्मुख की मानसी सृष्टि की तरह चमत्कार पूर्ण किन्तु निःसार और निरवलम्ब जगत् की अवतारणा करते हैं। न केवल बाह्यद्वन्द्व दिखाकर मानवता के सामने पाशव् आदर्श रखते हैं। वरन्, वे इन दोनों अंगों के समुचित संमिश्रण होने के कारण मानवता के उच्चतम आदर्श के पूर्ण व्यंजक हैं। अतएव मानवता की वे एक बड़ी भारी पूँजी हैं।

अजातशत्रु

'[illegible]' के [illegible] में [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] है। [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] नहीं। [illegible] है कि [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] को, [illegible] को [illegible] के [illegible] [illegible] के [illegible] में [illegible] [illegible] की [illegible] को [illegible] कर [illegible] है, [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] है—

"[illegible] [illegible] [illegible] किसी [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] की [illegible] [illegible]—[illegible] के किसी [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में न [illegible]।"

"[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible] "[illegible]" [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible]।"

[illegible] [illegible] नहीं, [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] है, और [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

[illegible] [illegible] '[illegible]' के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है—[illegible] [illegible] है—[illegible] के [illegible] के [illegible] की [illegible] है। [illegible] नहीं कि, वे [illegible] हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] हुई है।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible]

हम यही चाहते हैं कि 'अजातशत्रु' पढ़कर पाठक हमारी समीक्षा की जाँच करें।

हाँ, इस नोट के समाप्त करने के पहले एक बात और कहनी है—

भारतवर्ष की किसी भी भाषा में लिखे जाने वाले नाटकोंमें, उनके लेखक घटनाकाल के रहन सहन, चाल व्यवहार की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। उनके पात्रोंके नाम भर तो ऐतिहासिक रहते हैं लेकिन अपने आचार व्यवहार से वे वर्तमान काल के मनुष्य—सो भी स्वदेश के नहीं, पश्चिम के—जान पड़ते हैं।

किन्तु, 'प्रसाद' जी इस दोष से प्रायः बिलकुल बचे हैं। अभी तक हमारे पूर्वजों के सामाजिक जीवन की बहुत ही थोड़ी खोज हुई है। जो कुछ हुई है 'प्रसाद' जी अपने नाटकों में उसका पूर्ण उपयोग करने के भागी हैं।

काशी
२०–११–२२

कृष्णदास

वक्तव्य

'इन्सान' के अन्तर्गत [illegible] में पवित्रता, ममता, [illegible] आदि [illegible] प्रदर्शित है कि वे पूर्ण मनुष्य हैं। उनका विश्वास, [illegible] होने के कारण [illegible] नहीं। [illegible] [illegible] है कि वह [illegible], [illegible] इसी प्रकार के [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] [illegible] [illegible] को, जिन्होंने मनुष्य को [illegible] [illegible] के भिन्न भिन्न प्रकार के [illegible] में [illegible] कर [illegible] की [illegible] को [illegible] कर सकता है, [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] है—

"[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किसी [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] को [illegible] करके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो न सकता।"

"[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] और "मनुष्य" [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) मुझे न [illegible]।"

[illegible] [illegible] नहीं, [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] है, और [illegible] हुए, [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

[illegible] [illegible] 'इन्सान' के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है—[illegible] के [illegible] के [illegible] की [illegible] है। [illegible] नहीं [illegible], वे [illegible] हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] हुई है।

[illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible]

हम यही चाहते हैं कि 'अजातशत्रु' पढ़कर पाठक हमारी समीक्षा की जाँच करें।

हाँ, इस नोट के समाप्त करने के पहले एक बात और कहनी है—

भारतवर्ष की किसी भी भाषा में लिखे जाने वाले नाटकोंमें, उनके लेखक घटनाकाल के रहन सहन, चाल व्यवहार की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। उनके पात्रोंके नाम भर तो ऐतिहासिक रहते हैं लेकिन अपने आचार व्यवहार से वे वर्तमान काल के मनुष्य—सो भी स्वदेश के नहीं, पश्चिम के—जान पड़ते हैं।

किन्तु, 'प्रसाद' जी इस दोष से प्रायः बिलकुल बचे हैं। अभी तक हमारे पूर्वजों के सामाजिक जीवन की बहुत ही थोड़ी खोज हुई है। जो कुछ हुई है 'प्रसाद' जी अपने नाटकों में उसका पूर्ण उपयोग करने के भागी हैं।

काशी
२०—११—२२

कृष्णदास

बंग-साहित्य प्रेमियों के एक दल द्वारा आदृत स्वर्गीय नाटककार द्विजेन्द्र बाबू का कथन है—"जिस नाटक में अन्तर्द्वन्द्व दिखाया जाय वही नाटक उच्च श्रेणी का होता है—अन्तर्विरोध के रहे बिना उच्चश्रेणी का नाटक बन ही नहीं सकता।" यह सिद्धान्त किसी अंश में ठीक है, क्योंकि ऐसा होने से काव्य में प्रशंसित लोकोत्तर चमत्कार आता है। किन्तु, यही सिद्धान्त चरम है, ऐसा मानना कठिन है, क्योंकि अन्तर्विरोध से अन्तर्द्वन्द्व, अन्तर, का उदय है और इस अन्तर्द्वन्द्व का काल-क्रम से शीघ्र अवसान होता है—इसी का चित्रण कवि के अभीष्ट को शीघ्र मन्दिर में लाता है।

अन्तर्द्वन्द्व सब अवस्था में घटना का अन्त कर देना, उसे कल्पना का क्षेत्र बना देना, छोटी छोटी घटनाओं पर अवलम्बित आख्यायिकाओं का काम है। यदि नाटक अपने ऊपर यह भार उठावें तो उनसे दर्शकों को केवल कल्पना की शिक्षा मिलेगी, और सन्देह-वाद की पुष्टि होगी। और, चरित्र-गठन को उपकरण देने से, तथा मानव-समाज के शासन-साधन के सहायक होने से—जो नाटक का उद्देश्य नहीं, तो निर्दिष्ट अवश्य है—वे वञ्चित ही रहेंगे।

अजातशत्रु का—अपने समय का—हमारे जीवन से विशेष सम्बन्ध है। इसी आख्यान से हम अपने चरित्र के लिये उदाहरण ग्रहण करते हैं, आदर्श बनाते हैं, अनुकरण करते हैं। अब जो चरित्र भावना की आवश्यकता शक्ति के अधीन होकर नहीं रहते विशेष शिक्षा देता। साथ ही विशेष विशेष की अपनी दुर्बलता। जो हुआ है वह केवल कौतुक और

आश्चर्य ही का उद्दीपन करेगा। वह, प्रबल प्रतिघात तथा वृत्तियों को विपरीत धक्के खिलाकर उत्तेजित करके अथवा, बलवती वासनाओं को दुर्दान्त मानवरूप में अति चित्रण करके समाज में कुतूहल उपजावेगा। उसकी चंचलता बढ़ावेगा और उसमें क्रान्ति करा देगा। ऐसे ही नाटक चाहे वे रचना में प्रसादान्त क्यों न हों, मानवता के लिए, परिणाम में विषादान्त होते हैं।

किन्तु जहाँ वासनाओं का चरित्र के साथ उत्थान और पतन तथा संघर्ष होगा, साथ ही उत्कट वासनाओं का आरम्भ होकर शान्त हृदय में अवसान होगा, वह नाटक मरणान्त भले ही हो किन्तु है मानवता के लिए प्रसादान्त। 'प्रसाद' जी के नाटकों में एक यह भी मुख्य विशेषता है।

'अजातशत्रु' का अन्तिम दृश्य इसका प्रस्तुत प्रमाण है। यद्यपि अंत में बिम्बसार का लड़खड़ाना यवनिकापतन के साथ उसके मरण का द्योतक है। किन्तु, जिन वाक्यों को कहता हुआ वह लड़खड़ाता है वह वाक्य तथा उसी क्षण भगवान् गौतम का प्रवेश, बिम्बसार के हृदय की, तथा उस अवसर की पूर्ण शान्तिका सूचक है।

हाँ, 'प्रसाद' जी के नाटक ऐसे ही हैं। वे न तो केवल अन्तर्द्वन्द्व को लेकर मर्त्यलोक में, चतुर्मुख की मानसी सृष्टि की तरह चमत्कार पूर्ण किन्तु निःसार और निरवलम्ब जगत् की अवतारणा करते हैं। न केवल बाह्यद्वन्द्व दिखाकर मानवता के सामने पाशव आदर्श रखते हैं। वरन्, वे इन दोनों अंगों के समुचित संमिश्रण होने के कारण मानवता के उच्चतम आदर्श के पूर्ण व्यंजक हैं। अतएव मानवता की वे एक बड़ी भारी पूँजी हैं।

'प्रसाद' के आदर्श पात्रों में पवित्रता, उच्चता, भव्यता आदि देवगुण इसलिए हैं कि वे पूर्ण मनुष्य हैं। उनका बिम्बसार, मगधाधिप होने के कारण बड़ा नहीं। उसकी बड़ाई इसलिए है कि वह नीचे लिखे, तथा इसी प्रकार के अन्य वाक्य द्वारा उन संकीर्ण सामाजिक नियमों को, जिन्होंने मनुष्य को ऊँच नीच के भिन्न भिन्न प्रकार के बंधनों में जकड़ कर मानवता की पवित्रता को पददलित कर रक्खा है, किन ज़ोरों में भग्न किया है—

"यदि मैं सम्राट् न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलय झुरमुट में एक अधखिला फूल होता और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती—पवन के किसी लहर को सुरभित करके धीरे से उस थाले में चू पड़ता—तो इतना भीषण चीत्कार इस विश्व में न मचता।"

"पुत्र! यदि मेरा नाम न जानते हो तो "मनुष्य" कह कर पुकारो। वह भयानक सम्बोधन (सम्राट्) मुझे न चाहिये।"

इतना ही नहीं, उसके जीवन भर में मानवता ओतप्रोत है, और उसका पुत्र, क्रूर अजातशत्रु भी अन्त को उसके आगे सिर झुकाता है।

इसी तरह 'प्रसाद' के स्त्री-पुरुष पात्रों को भी हम इसी लिए महान् कह सकते हैं कि उनमें मानवता का पूर्ण विकास है। उनके गुण इसलिए गुण हैं—इसलिए महान हैं—कि वे मानवता के आदर्शों की पूर्ति हैं। यह नहीं कि, वे महान हैं, अतः उनमें इन आदर्शों की पूर्णता प्रदर्शित हुई है।

कवि की इस कविता पर बहुत कुछ कहा जा सकता है लेकिन

हम यही चाहते हैं कि 'अजातशत्रु' पढ़कर पाठक हमारी समीक्षा की जाँच करें।

हाँ, इस नोट के समाप्त करने के पहले एक बात और कहनी है—

भारतवर्ष की किसी भी भाषा में लिखे जाने वाले नाटकोंमें, उनके लेखक घटनाकाल के रहन सहन, चाल व्यवहार की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। उनके पात्रोंके नाम भर तो ऐतिहासिक रहते हैं लेकिन अपने आचार व्यवहार से वे वर्तमान काल के मनुष्य—सो भी स्वदेश के नहीं, पश्चिम के—जान पड़ते हैं।

किन्तु, 'प्रसाद' जी इस दोष से प्रायः बिलकुल बचे हैं। अभी तक हमारे पूर्वजों के सामाजिक जीवन की बहुत ही थोड़ी खोज हुई है। जो कुछ हुई है 'प्रसाद' जी अपने नाटकों में उसका पूर्ण उपयोग करने के भागी हैं।

काशी
२०—११—२२

कृष्णदास

कथा-प्रसंग

इतिहास में घटनाओं की प्राय पुनरावृत्ति होते देखी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें कोई नई घटना होती ही नहीं। किन्तु असाधारण नई घटना भी भविष्यत् में फिर होने की आशा रखती है। मानवसमाज की कल्पना का भांडार अपार है, क्योंकि वह इच्छा-शक्ति का विकास है। इन कल्पनाओं का, इच्छाओं का मूलसूत्र बहुत ही सूक्ष्म और अपरिस्फुट होता है। जब वह इच्छाशक्ति किसी व्यक्ति या जाति में केन्द्रीभूत होकर अपना सफल या विकसित रूप धारण करती है, तभी इतिहास की सृष्टि होती है। विश्व में जब तक कल्पना इयत्ता को नहीं प्राप्त होती, तब तक वह रूप-परिवर्तन करती हुई पुनरावृत्ति करती ही जाती है। समाज की अभिलाषा अनंत स्रोतवाली है। पूर्व कल्पना के पूर्ण होते होते एक नई कल्पना उसका विरोध करने लगती है, और पूर्व कल्पना कुछ काल तक ठहर कर, फिर होने के लिये अपना क्षेत्र प्रस्तुत करती है। इधर इतिहास का कथित अध्याय पूर्ण होता है। मानव समाज के इतिहास का इसी प्रकार संकलन होता है।

भारत का ऐतिहासिक काल

बौद्धयुग से आरम्भ होता है, क्योंकि इस काल की बौद्ध-कथाओं में वर्णित व्यक्तियों का पुराणों की वंशावली में भी वर्णन मिलता है। इसलिये

लोग वहीं से प्रामाणिक इतिहास मानते हैं। पौराणिक काल के बाद गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व ने तत्कालीन सभ्य-संसार में बड़ा भारी परिवर्तन किया। इसलिए हम कहेंगे कि भारत के ऐतिहासिक काल का प्रारंभ धन्य है, जिसने संसार में पशु-कीट-पतंग से लेकर इन्द्र तक के साम्यावद की शंख-ध्वनि की थी। केवल इसी कारण हमें, अपना अतीव प्राचीन इतिहास रखने पर भी, यहीं से इतिहास-काल का प्रारंभ मानने में गर्व होना चाहिये।

भारत-युद्ध के पौराणिक काल के बाद इन्द्रप्रस्थ के पाण्डवों की प्रभुता कम होने पर बहुत दिनों तक कोई सम्राट् नहीं हुआ। भिन्न-भिन्न जातियाँ अपने-अपने देशों में शासन करती थीं। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथों में ऐसे १६ राष्ट्रों का उल्लेख है, प्रायः उनका वर्णन भौगोलिक क्रम के अनुसार न होकर जातीयता के अनुसार है। उनके नाम हैं—अङ्ग, मगध, काशी, कोशल, वृजि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वक, अवंतिक, गांधार और कांबोज।

उस काल में जिन लोगों से बौद्धों का सम्बन्ध हुआ है, इनमें उन्हीं का नाम है। जातक-कथाओं में शिवि, सौवीर, मद्र, विराट् और उद्यान का भी नाम आया है। किन्तु उनकी प्रधानता नहीं है। उस समय जिन छोटी-से-छोटी जातियों, गणों और राष्ट्रों का सम्बन्ध बौद्ध-धर्म से हुआ, उन्हें प्रधानता दी गई; जैसे 'मल्ल' आदि।

अपनी-अपनी स्वतंत्र कुलीनता और आचार रखनेवाले इन राष्ट्रों में—कितनों ही में गण-तंत्र-शासन-प्रणाली भी प्रचलित थी—निसर्ग-नियमानुसार इनमें एकता, राजनीति के कारण नहीं, किन्तु एक—

धार्मिक क्रान्ति,

से होनेवाली थी। वैदिक हिंसा-पूर्ण यज्ञों और पुरोहितों के एकाधिपत्य से साधारण जनता के हृदय-क्षेत्र में विद्रोह की उत्पत्ति हो रही थी। उसी के फल-स्वरूप जैन और बौद्ध-धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। परम अहिंसा-वादी जैन-धर्म के बाद बौद्ध-धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। वह हिंसामय 'वेद-वाद' और पूर्ण अहिंसावादी जैन-दीक्षाओं के 'अति-वाद' से बचता हुआ एक मध्यवर्ती नया मार्ग था। संभवतः धर्म-चक्र-प्रवर्तन के समय गौतम ने इसी से अपने धर्म को 'मध्यमा प्रतिपदा' के नाम से अभिहित किया और इसी धार्मिक क्रांति ने भारत के भिन्न भिन्न राष्ट्रों को परस्पर सन्धि-विग्रह करने के लिए बाध्य किया।

इन्द्रप्रस्थ और अयोध्या के प्रभाव का ह्रास होने पर, इसी धर्म के प्रभाव से पाटलिपुत्र पीछे बहुत दिनों तक भारत की राजधानी बना रहा। इस समय के बौद्ध-ग्रन्थों में ऊपर कहे हुए बहुत से राष्ट्रों में से चार प्रमुख राष्ट्रों का बहुत वर्णन है—कोसल, मगध, अवन्ती और वत्स। कोसल का पुराना राष्ट्र यद्यपि उस काल के सब राष्ट्रों से विशेष मर्यादा रखता था, किन्तु वह जर्जर हो रहा था। प्रसेनजित् वहाँ का राजा था। अवन्ती में प्रद्योत (चण्ड) का शासन था। मगध का राष्ट्र भी उस समय जगता था। मगध, जिसने मौर्यों के बाद भारत में महान् साम्राज्य स्थापित किया, प्रतिद्वन्द्वी हो रहा था। बिम्बसार यहाँ के राजा थे।

अजातशत्रु,

वैशाली (वृजि) की राजकुमारी से मगध, [illegible] का पुत्र था। इसका

वर्णन भी बौद्धों की प्राचीन कथाओं में बहुत मिलता है। बिम्बसार की बड़ी रानी कोशला कोशल-नरेश प्रसेनजित् की बहन थी। वत्स-राष्ट्र की राजधानी कौशांबी थी, जिसका खँड़हर जिला बाँदा (करुई-सब-डिवी-ज़न) में यमुना के किनारे 'कोसम्' नाम से प्रसिद्ध है।

उदयन,

इसी कौशांबी का राजा था। इसने मगधराज और अवन्ती-नरेश, दोनों की राजकुमारियों से विवाह किया था। भारत के सहस्रजनी-चरित्र 'कथा-सरित्सागर' का नायक इसी का पुत्र नरवाहनदत्त है।

बृहत्कथा (कथा-सरित्सागर) के आदि आचार्य वररुचि हैं, जो कौशांबी में उत्पन्न हुए थे, और जिन्होंने मगध में नन्द का मंत्रित्व किया। उदयन के समकालीन अजातशत्रु के बाद उदयाश्व, नंदिवर्द्धन और महा-नन्द नाम के तीन राजा मगध के सिंहासन पर बैठे। शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न, महानन्द के पुत्र, महापद्म ने नन्द-वंश की नींव डाली। इसके बाद सुमाल्य आदि ८ नंदों ने शासन किया (विष्णु पुराण, ४ अंश)। किसी के मत से महानंद के बाद नव नन्दों ने राज्य किया। इसी 'नव नन्द' वाक्य के दो अर्थ हुए—नव नन्द (नवीन नन्द), तथा महापद्म और सुमाल्य आदि ९ नन्द। इनका राज्य-काल, विष्णु-पुराण के अनुसार १०० वर्ष है। नन्द के पहले राजाओं का राज्य-काल भी, पुराणों के अनुसार, लगभग १०० वर्ष होता है। ढुंढि ने मुद्राराक्षस के उपोद्घात में अन्तिम नन्द का नाम धननन्द लिखा है। इसके बाद योगानन्द का मन्त्री वर-

रुचि हुआ। यदि ऊपर लिखी हुई पुराणों की गणना सही है, तो मानना होगा कि उदयन के पीछे, १०० वर्ष के बाद, वररुचि हुए; क्योंकि पुराणों के अनुसार ४ शिशुनाग-वंश के और नवनन्दवंश के राजाओं का राज्य-काल इतना ही होता है। महावंश और जैनों के अनुसार कालाशोक के बाद केवल नवनन्द का नाम आता है। कालाशोक पुराणों का महानन्द है। बौद्धमतानुसार इन शिशुनाग तथा नन्दों का सम्पूर्ण राज्यकाल १०० वर्ष से कुछ ही अधिक होता है। यदि इसे माना जाय तो उदयन के १००–११५ वर्ष पीछे वररुचि का होना प्रमाणित होगा। कथासरित्सागर में इसी का नाम 'कात्यायन' भी है—"नाम्ना वररुचिः किंच कात्यायन इति श्रुतः।" इन विवरणों से प्रतीत होता है कि वररुचि उदयन के ११५–१०० वर्ष बाद हुए। निश्चय उदयन की कौशांबी वररुचि की जन्मभूमि है।

मूल बृहत्कथा वररुचि ने काणभूति से कही, और काणभूति ने गुणाढ्य से। इससे स्पष्ट होता है कि यह कथा वररुचि के मस्तिष्क का आविष्कार है, जो मूलतः उसके संक्षिप्त रूप में संस्कृत में कही थी; क्योंकि उदयन की कथा उसकी जन्मभूमि में किंवदन्तियों के रूप में प्रचलित रही होगी। फिर मूल बृहत्कथा को क्रमशः काणभूति और गुणाढ्य ने प्राकृत और पैशाची भाषाओं में विस्तार पूर्वक लिखा। महाकवि क्षेमेन्द्र ने उसे बृहत्कथामंजरी नाम से, संक्षिप्त करके, संस्कृत में लिखा। फिर काश्मीरराज अनन्तदेव के राज्य-काल में कथासरित्सागर की रचना हुई। इस कथासागर को अंग्रेजी में टानी ने अनुवाद किया। और कथासार उदयन

कई नाटकों और उपाख्यानों में नायक बनाये गए। स्वप्न-वासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगंधरायण और रत्नावली में इन्हीं का वर्णन है। हर्षचरित में लिखा है—"नागवनविहारशीलं च मायामतंगांगान्निर्गता महासेनसैनिका वत्सपतिं न्ययंसिषुः।" मेघदूत में भी—"प्राप्यावंतीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्" और "प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे" इत्यादि है। इसी से इस कथा की सर्वलोकप्रियता समझी जा सकती है। वररुचि ने इस उपाख्यान-माला को सम्भवतः ३५० ई० पूर्व लिखा होगा। फिर सातवाहन नामक आंध्र-नरपति के राजपंडित गुणाढ्य ने इसे बृहत्कथा नाम से ईसा की पहली शताब्दी में, लिखा। इस कथा का नायक नरवाहनदत्त इसी उदयनका पुत्र था।

बौद्धों के यहाँ इसके पिता का नाम 'परंतप' मिलता है। और, 'मरन परिदीपित उदेनिवस्तु' के नाम से एक आख्यायिका है। उसमें भी (जैसा कि कथासरित्सागर में) इसकी माता का गरुड़-वंश के पक्षी द्वारा उदयगिरि की गुफा में ले जाया जाना और वहाँ एक मुनि-कुमार का उसकी रक्षा और सेवा करना लिखा है। बहुत दिनों तक इसी प्रकार साथ रहते-रहते मुनि से उसका स्नेह हो गया और उसी से वह गर्भवती हुई। उदय-गिरि (कलिंग) की गुफा में जन्म होनेके कारण लड़के का नाम उदयन पड़ा। मुनि ने उसे हस्ती वश करने की विद्या और और भी कई सिद्धियाँ दीं। एक वीणा भी मिली (कथा-सरित्सागर के अनुसार वह, प्राण बचाने पर, नागराज ने दी थी)। वीणा द्वारा हाथियों और शबरों की बहुत सी सेना एकत्र करके उसने कौशांबी को

अर्जुन से सातवीं पीढ़ी में उदयन का होना तो किसी प्रकार से ठीक नहीं माना जा सकता, क्योंकि अर्जुन के समकालीन जरासंध के पुत्र सहदेव से लेकर, शिशुनाग-वंश से पहले के जरासंध-वंश के २२ राजा मगध के सिंहासन पर बैठ चुके हैं। उनके बाद १२ शिशुनाग-वंश के बैठे, जिनमें छठे और सातवें राजाओं के समकालीन उदयन थे। तो क्या एक वंश में, उतने ही समय में, ३४ पीढ़ियाँ हो गईं, जितने में कि दूसरे वंश में केवल सात ही पीढ़ियाँ हुईं? यह बात कदापि मानने योग्य न होगी। संभवतः इसी विषमता को देखकर कलिंगनाथ शास्त्री ने "अभिमन्योः पंचविंशः वंशजः" इत्यादि लिखा है। कौशाम्बी में न तो अभी विशेष खोज ही हुई है, और न विशेष शिलालेख इत्यादि ही मिले हैं। इसलिये संभव है, कौशाम्बी के राजवंश का रहस्य अभी पृथ्वी के गर्भ में ही दबा पड़ा हो।

कथा-सरित्सागर में उदयन की दो रानियों का नाम मिलता है, किन्तु बौद्धों के धार्मिक ग्रंथों में उसकी तीसरी रानी मागंधी का नाम भी आया है।

वासवदत्ता और पद्मावती,

इनमें से वासवदत्ता उसकी बड़ी रानी थी, और अवन्ती के चंडमहासेन की कन्या थी। इसी चंड का नाम प्रद्योत भी था, क्योंकि मेघदूत में "प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे" और किसी कवि के "चंडमहासेनस्य दुहितरं वत्सराजो जहार" ये दोनों पद मिलते हैं। इधर बौद्धों के ग्रंथों में भी उज्जयिनी के राजा का नाम प्रद्योत मिलता है और कथासरित्सागर

के एक श्लोक से एक भ्रम और भी उत्पन्न होता है । वह यह है—"ततश्चंडमहासेनप्रद्योतौ पितरौ द्वयोः देव्योः...।" तो क्या प्रद्योत पद्मावती के पिता का नाम था? किन्तु कुछ लोग प्रद्योत और चंड-महासेन को एक ही मानते हैं। यही मत ठीक है, क्योंकि भास ने भी अवंती के राजा का नाम प्रद्योत ही लिखा है, और वासवदत्ता में उसने यह दिखाया है कि मगध-राजकुमारी पद्मावती को वह अपने लिये चाहता था। जैकोबीने अपने वासवदत्ता के अनुवाद में अनुमान किया है कि यह प्रद्योत चंड-महासेन का पुत्र था; किन्तु जैसा कि प्राचीन राजाओं का देखा जाता है, यह अवश्य अवंती के राजा का मुख्य नाम था । उसका राज्य-नाम चंड-महासेन था । बौद्धों के लेख से प्रसेनजित् के एक दूसरे नाम 'अग्निदत्त' का भी पता लगता है । विम्बसार श्रेणिक और अजातशत्रु कुणीक के नाम से भी विख्यात था ।

पद्मावती, उदयन की दूसरी रानी, के पिता के नाम में बड़ा मतभेद है । यह तो निर्विवाद है कि वह मगधराज की कन्या थी, क्योंकि कथा-सरित्सागर में भी यही लिखा है । किन्तु बौद्धों ने उसका नाम श्यामावती लिखा है, जिस पर, मागंधी के द्वारा उत्तेजित किये जाने पर, उदयन बहुत नाराज़ हो गए थे । श्यामावती के ऊपर, बौद्ध-धर्म का उपदेश सुनने के कारण, बहुत क्रुद्ध हुए । यहाँ तक कि उसे जला डालने का भी उपक्रम हुआ था । किन्तु भास की वासवदत्ता में इस रानी के भाई का नाम दर्शक लिखा है । पुराणों में भी अजातशत्रु के बाद दर्शक, हर्षक, दर्भक और वंशक इन कई नामों से अभिहित एक राजा का उल्लेख है । किन्तु महावंश आदि बौद्ध-ग्रन्थों में केवल अजात के पुत्र उदयाश्व का ही

नाम दर्शक, उदयभद्रक के स्थान में, लिखा है। मेरा अनुमान है कि पद्मावती अजातशत्रु की बहन थी, और भास ने संभवतः (कुणीक के स्थान में) अजात के दूसरे नाम, दर्शक, का ही प्रयोग किया है, जैसा कि उसने चंड-महासेन के लिये प्रद्योत नाम का प्रयोग किया है।

यदि पद्मावती अजातशत्रु की कन्या हुई, तो इन बातों को भी विचारना होगा कि जिस समय बिम्बसार मगध में, अपनी वृद्धावस्था में, राज्य कर रहा था, उस समय पद्मावती का विवाह हो चुका था। प्रसेनजित उसका समवयस्क था। वह बिम्बसार का साला था। कलिंगदत्त ने प्रसेनजित को अपनी कन्या देनी चाही थी, किन्तु स्वयं उसकी कन्या, कलिंगसेना, ने प्रसेन को वृद्ध देखकर उदयन से विवाह करने का निश्चय किया था।

"कालवती ददृशे पूर्वं च तं प्रसेनजितं नृपम् ।
मृगयानिर्गतं दूरादद्राक्षीद् वृद्धं सा ॥

× × × ×

जराजर्जरितं सर्वाङ्गं पाण्डुमूर्धजम् । इत्यादि
(मदनमंचुका लंबक)

अर्थात् महल झरोखे में बैठकर, उपवन में दूर तक, उसने सर्वांग पके हुए प्रसेनजित को, शिकार के लिये जाते समय, दूर से देखा। वह वृद्धावस्था के कारण श्वेत वर्ण हो रहे थे।

इन बातों से विदित है कि "प्रसेनजित ने अपना वही ...

में, उदयन के राज्यकाल में व्यतीत किया और ४५ चातुर्मास्य करके उनका निर्वाण हुआ।" ऐसा भी कहा जाता है कि—

अजातशत्रु के राज्याभिषेक के

नवें या आठवें वर्ष में गौतम का निर्वाण हुआ। इससे प्रतीत होता है कि गौतम के ३५ वें ३६ वें चातुर्मास्य के समय अजातशत्रु सिंहासन पर बैठा। तब तक वह बिंबसार का प्रतिनिधि या युवराज-मात्र था। क्योंकि अजातने अपने पिता को अलग करके, प्रतिनिधि-रूप से, बहुत दिनों तक राज्यकार्य किया था, और इसी कारण गौतम ने राजगृह का जाना बन्द कर दिया था। ३५ वें चातुर्मास्य में ९ चातुर्मास्यों का समय घटा देने से निश्चय होता है कि अजात के सिंहासन पर बैठने के २६ वर्ष पहले उदयन ने पद्मावती और वासवदत्ता से विवाह कर लिया था, और वह एक स्वतंत्र शक्तिशाली नरेश था। इन बातों के देखने से यही ठीक जँचता है कि पद्मावती *अजातशत्रु की ही बड़ी बहन थी, और पद्मावती को अजातशत्रु से बड़ी* मानने के लिये यह विवरण यथेष्ट है। दर्शक का उल्लेख पुराणों में मिलता है, और भास ने भी अपने नाटक में वही नाम लिखा है। किंतु समय का व्यवधान देखने से—और बौद्धों के यहाँ उसका नाम न मिलने के कारण—यही अनुमान होता है कि प्रायः जैसे एक ही राजा को बौद्ध, जैन और पौराणिक लोग भिन्न-भिन्न नाम से पुकारते हैं, वैसे ही दर्शक, कुणीक और अजातशत्रु ये नाम एक ही व्यक्ति के हैं। जैसे बिम्बसार के लिये विंध्यसेन और श्रेणिक ये दो नाम और भी मिलते हैं। किन्तु प्रोफ़ेसर गेजर अपने महावंश के अनुवाद में बड़ी दृढ़ता से अजातशत्रु और उदयाश्व

के अंत में दर्शक नाम के किसी राजा के होने का विरोध करते हैं। कथा-सरित्सागर के अनुसार प्रसेन ही पद्मावती के पिता का नाम था। इन सब बातों के देखने से यही अनुमान होता है कि पद्मावती बिम्बसार की बड़ी रानी कोशला (वासवी) के गर्भ से उत्पन्न मगधराजकुमारी थी।

नवीन उन्नतिशील राष्ट्र मगध,

जिसने मौर्यों के बाद महान साम्राज्य भारत में स्थापित किया, इस नाटक की घटना का केन्द्र है। मगध को कोशल का दिया हुआ, राजकुमारी कोशला (वासवी) के दहेज में काशी का प्रांत था, जिसके लिये मगध के राजकुमार अजातशत्रु और प्रसेनजित से युद्ध हुआ। इस युद्ध का कारण, काशी प्रांत के कर-का लेने का झगड़ा था। 'हरितमातक' 'वड्ढकि-सूकर' और 'तच्छ-सूकर जातक' की कथाओं का इसी घटना से सम्बन्ध है।

अजातशत्रु जब अपने पिता के जीवन में ही राजाधिकार का भोग कर रहा था और जब उसकी विमाता कोशलकुमारी वासवी अजात के द्वारा एक प्रकार तिरस्कृता सी हो रही थीं, उस समय उनके पिता (कोशल नरेश) प्रसेनजित् ने उचित किया कि मेरी दी हुई काशी प्रांत [illegible] की आय वासवी को ही मिले। निदान, इसी बात को लेकर ही युद्ध [illegible] इसी युद्ध में अजातशत्रु बंदी हुआ। संभवतः इस बार [illegible] के [illegible] कोशल को [illegible] थी। फिर भी [illegible] [illegible]

के लिये और अपनी बात भी रखने के लिये, अजातशत्रु से अपनी दुहिता वाजिराकुमारी का व्याह कर दिया।

अजातशत्रु के हाथ से उसके पिता बिम्बसार की हत्या होने का उल्लेख भी मिलता है। 'थुस-जातक-कथा' अजातशत्रु का अपने पिता से राज्य छीन लेने के सम्बन्ध में, भविष्यद्वाणी के रूप से कही गई है। परन्तु बुद्धघोष ने बिम्बसार का बहुत दिन तक अधिकारच्युत होकर बंदी की अवस्था में रहना लिखा है। और, जब अजातशत्रु को पुत्र हुआ तब उसे 'पैतृक स्नेह' का मूल्य समझ में आया। उस समय वह स्वयं पिता को कारागार से मुक्त करने के लिये गया, किन्तु उस समय वहाँ महाराज बिम्बसार की अन्तिम अवस्था थी। इस तरह से भी पितृहत्या का कलङ्क उस पर आरोपित किया जाता है। किन्तु कई विद्वानों के मत से इसमें सन्देह है कि अजात ने वास्तव में पिता को वन्दी वनाया, या मार डाला था। उस काल की घटनाओं को देखने से प्रतीत होता है कि बिम्बसार पर—

का अधिक प्रभाव पड़ा था। उसने अपने पुत्र का उद्धत स्वभाव देख कर जो कि गौतम के विरोधी देवदत्त के प्रभाव में विशेष रहता था, स्वयं सिंहासन छोड़ दिया होगा।

इसका कारण भी है। अजातशत्रु की माता छलना, वैशाली के राजवंश की थी, जो जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी की निकट सम्बन्धिनी थी। वैशाली की वृज जाति (लिच्छवी) अपने गोत्र के महावीर स्वामी का धर्म विशेष रूप से मानती थी। छलना का झुकाव अपने ...

की ओर आकृष्ट था। दूसरा देवदत्त, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने गौतमबुद्ध के मार डालने का एक भारी षड़यंत्र रचा था, और किशोर अजात को अपने प्रभाव में लाकर राजशक्ति से भी उसमें सहायता लेना चाहता था—चाहता था कि गौतम से वह अहिंसा की ऐसी व्याख्या संघ में प्रचलित कराये जो कि जैन-धर्म से मिलती हो। और उसके इस उद्देश में राजकुमार की सहानुभूति का भी मिलना स्वाभाविक ही था।

बौद्धमत में बुद्ध ने दृष्ट, श्रुत और परिशंकित इन्हीं तीन प्रकार की हिंसाओं का निषेध किया था। यदि भिक्षा में मांस भी मिले तो वर्जित नहीं था। किन्तु देवदत्त यह चाहता था कि 'संघ में यह नियम हो जाय कि कोई भिक्षु मांस खाय ही नहीं।' गौतम ने ऐसी आज्ञा नहीं प्रचारित की। देवदत्त को धर्म के बहाने जनता की सहानुभूति मिली और बहुत सी तथा बिम्बसार के साथ, जो बुद्ध के भक्त थे, शत्रुता भी होने लगी।

इसी दुश्चक्र को देख कर बिम्बसार ने स्वयं सिंहासन त्याग दिया और राजशक्ति के उपभोग से अजात को अपने पिता पर सन्देह रखने का कारण दूर होगा और विरोध मिटने की भी आवश्यकता नहीं होगी। देवदत्त और अजात के कारण गौतम को कष्ट पहुँचाने का विफल प्रयत्न हुआ। सम्भवतः इसी से अजात की क्रूरताओं का बौद्धसाहित्य में बहुत अतिरंजित वर्णन मिलता है।

कोशलनरेश प्रसेनजित्

[illegible]

था। बिरूद्धक की माता का नाम जातकों में वासभा खत्तिया मिलता है। (उसीका कल्पित नाम शक्तिमती है) प्रसेनजित् अजात के पास सहायता के लिये राजगृह आया था; किंतु, 'भद्दसाल-जातक' में इसका विस्तृत विवरण मिलता है कि विद्रोही विरूद्धक गौतम के कहने पर फिर से अपनी पूर्व मर्यादा पर अपने पिता के द्वारा अधिष्ठित हुआ।

इसने कपिलवस्तु का जनसंहार इसलिए चिढ़ कर किया था कि शाक्यों ने धोखा देकर प्रसेनजित् को शाक्यकुमारी के बदले एक दासी-कुमारी से ब्याह दिया था। जिससे दासी-संतान होने के कारण विरूद्धक को अपने पिता के द्वारा अपदस्थ होना पड़ा था। शाक्यों के संहार के कारण बौद्धों ने इसे भी क्रूरता का अवतार अंकित किया है। 'भद्दसाल-कथा' के सम्बन्ध में जातक में कोशल सेनापति बंधुल और उसकी स्त्री मल्लिका का विशद वर्णन है। इस बंधुल के पराक्रम से भीत होकर कोशल-नरेश ने इसकी हत्या करा डाली थी। और इसका बदला लेने के लिए, उसके भागिनेय दीर्घकारायण ने प्रसेनजित् से राज्यचिह्न लेकर क्रूर विरूद्धक को कोशल के सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

प्रसेन और विरूद्धक सम्बन्धिनी घटना का वर्णन अवदानकल्पलता में भी मिलता है। बिम्बसार और प्रसेन दोनों के ही पुत्र विद्रोही थे। और तत्कालीन धर्म के उलट-फेर में गौतम के विरोधी थे। इसीलिए इनका क्रूरतापूर्ण अतिरंजित चित्र बौद्ध इतिहास में मिलता है। उस काल के राष्ट्रों के उलट-फेर में धर्म के दुराग्रह ने भी सम्भवतः बहुत सा भाग लिया था।

मागन्धी, जिसके उकसाने से पद्मावती पर उदयन बहुत असन्तुष्ट हुए थे, वह ब्राह्मण-कन्या थी, जिसको उसके पिता गौतम से ब्याहना चाहते थे, और गौतम ने उसका तिरस्कार किया था। इसी मागन्धी को, और बौद्धों के साहित्य में वर्णित आम्रपाली (अम्बपाली) को, हमने कल्पना द्वारा एक में मिलाने का साहस किया है। अम्बपाली पतित और वेश्या होने पर भी गौतम के द्वारा अन्तिम काल में पवित्र की गई। (कुछ लोग जीवक को इसी का पुत्र मानते हैं।)

लिच्छिवियों का निमन्त्रण अस्वीकार करके गौतम ने उसकी भिक्षा स्वीकार की थी। बौद्धों की [illegible] वेश्या आम्रपाली, मागन्धी और इस नाटक की श्यामा वेश्या का एकत्र संघटन कुछ विचित्र तो होगा किन्तु चरित्र का विकास और कौतुक बढ़ाना ही इसका उद्देश्य है।

सम्राट् अजातशत्रु

अजातशत्रु के समय से मगध, साम्राज्य-रूप में परिणत हुआ। क्योंकि अंग और वैशाली को इसने स्वयं विजय किया था। और काशी अब निर्विवाद रूप से इसके अधीन हो गयी। कोशल भी इसका मित्रराष्ट्र था। वास्तव में भारत में इतिहास-काल का प्रथम सम्राट् हुआ।

मथुरा के समीप परखम ग्राम से मिली हुई अजातशत्रु की मूर्ति के लेख का विवरण जायसवाल जी मानते हैं कि अजातशत्रु ने [illegible] के अनुसार तक भी विजय किया था।

—लेखक

पुरुष-पात्र

बिम्बसार—मगध का सम्राट्

अजातशत्रु (कुणीक)—मगध का राजकुमार

उदयन—कौशाम्बी का राजा, मगधसम्राट् का जामाता

प्रसेनजित्—कोशल का राजा

विरुद्धक (शैलेन्द्र)—कोशल का राजकुमार

गौतम—बुद्धदेव

सारिपुत्र—सद्धर्म के आचार्य

आनन्द—गौतम के शिष्य

देवदत्त (भिक्षु)—गौतमबुद्ध का प्रतिद्वन्द्वी

समुद्रदत्त—देवदत्त का शिष्य

जीवक—मगध का राजवैद्य

वसन्तक—उदयन का विदूषक

बन्धुल—कोशल का सेनापति

सुदत्त—कोशल का कोषाध्यक्ष

दीर्घकारायण—सेनापति बन्धुल का भाञ्जा, सहकारी सेनापति

लुब्धक—शिकारी

काशी का दण्ड नायक, अमात्य, दूत, दौवारिक और अनुचरगण

स्त्री-पात्र

वासवी—मगधसम्राट् की बड़ी रानी

छलना— ,, छोटी रानी और राजमाता

पद्मावती—मगध की राजकुमारी, } उदयन की रानियाँ

मागन्धी (श्यामा)—आम्रपाली, } उदयन की रानियाँ

वासवदत्ता—उदयन की बड़ी रानी } उदयन की रानियाँ

शक्तिमती (महामाया)—शाक्यकुमारी, कोशल की रानी

मल्लिका—सेनापति बन्धुल की पत्नी

वाजिरा—कोशल की राजकुमारी

नवीना—सेविका

विजया, सरला, कञ्चुकी, दासी, नर्तकी इत्यादि

श्रीः

अजातशत्रु

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—प्रकोष्ठ

(राजकुमार अजातशत्रु, पद्मावती, समुद्रदत्त और शिकारी लुब्धक)

अजात०—क्यों रे लुब्धक ! आज तू मृगशावक नहीं लाया ! मेरा चित्रक अब किससे खेलेगा ?

समुद्र०—कुमार ! यह बड़ा दुष्ट हो गया है। आज कई दिनों से यह मेरी बात सुनता ही नहीं।

लुब्धक—कुमार ! हम तो आज्ञाकारी अनुचर हैं। आज हमने जब एक मृगशावक को पकड़ा तो उसकी माता ने ऐसी करुणाभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा कि उसे छोड़ देते ही बना। अपराध क्षमा हो।

अजात०—हाँ—तो फिर मैं तुम्हारी चमड़ी उधेड़ता हूँ। समुद्र ! ला तो मेरा कोड़ा।

समुद्र०—(कोड़ा लाकर देता है)—लीजिये। इसकी अच्छी पूजा कीजिए।

पद्मावती—(कोड़ा पकड़ कर)—भाई कुणीक! तुम इतने दिनों में ही बड़े निष्ठुर हो गये! भला इसे क्यों मारते हो?

अजात०—इसने मेरी आज्ञा क्यों नहीं मानी?

पद्मा०—इसे मैंने ही मना किया था, इसका क्या अपराध?

समुद्र०—(धीरे से)—तभी तो इसको आज कल गर्व हो गया है। किसी की बात नहीं सुनता।

अजात०—तो इस प्रकार तुम इसे मेरा अपमान करना सिखाती हो।

पद्मा०—यह मेरा कर्तव्य है कि तुमको अभिशापों से बचाऊँ और अच्छी बातें सिखाऊँ। जा रे लुब्धक, जा, चला जा। कुमार जब मृगया खेलने जावें तो उनकी सेवा करना। निरीह जीवों को पकड़ कर निर्दयता सिखाने में सहायक न होना।

अजात०—यह तुम्हारी बढ़ाबढ़ी मैं सहन नहीं कर सकता।

पद्मा०—मानवी सृष्टि करुणा के लिये है, यों तो क्रूरता के निदर्शन हिंस्र पशु, जगत में क्या कम हैं?

समुद्र०—देवि! करुणा और स्नेह के लिये तो स्त्रियाँ जगत में हुई हैं, किन्तु पुरुष भी क्या वही हो जाय?

पद्मा०—चुप रहो समुद्र! क्या क्रूरता ही पुरुषार्थ का परिचय है? ऐसी चाटुकारी भरी बातें बालक को अच्छी नहीं बनातीं।

(छलना का प्रवेश)

छलना—पद्मावती! यह तुम्हारा दुर्विचार है। कुणीक का हृदय छोटी छोटी बातों में तोड़ देना, उसे डरा देना, उसकी मानसिक उन्नति में बाधा देना है।

पद्मा०—माँ, यह क्या कह रही हो ! कुणीक मेरा भाई है, मेरे सुखों की आशा है, मैं उसे कर्त्तव्य क्यों न बताऊँ ? क्या उसे चाटुकारों की चाल में फँसते देखूँ और कुछ न कहूँ ।

छलना—तो क्या तुम उसे बोदा और डरपोक बनाना चाहती हो ? क्या निर्बल हाथों से भी कोई राजदण्ड ग्रहण कर सकता है ?

पद्मा०—माँ, क्या कठोर और क्रूर हाथों से ही राज्य सुशासित होता है ? ऐसा विषवृक्ष लगाना क्या ठीक होगा ? अभी कुणीक किशोर है; यही समय सुशिक्षा का है । बच्चों का हृदय कोमल थाला है, चाहे इसमें कटीली झाड़ी लगा दो, चाहे फूलों के पौधे ।

कुणीक—फिर तुमने मेरी आज्ञा क्यों भङ्ग होने दी ? क्या दूसरे अनुचर इसी प्रकार मेरी आज्ञा का तिरस्कार करने का साहस नहीं करेंगे ?

छलना—यह कैसी बात ?

कुणीक—मेरे चित्रक के लिये जो मृग आता था उसे ले आने के लिये लुब्धक रोक दिया गया । आज वह कैसे खेलेगा ?

छलना—पद्मा ! क्या तू इसकी मंगल-कामना करती है ! इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुओं की भोंड़ी सीख है । जो राजा होगा, जिसे शासन करना होगा, वह भिखमंगों का पाठ नहीं पढ़ सकता । राजा का परम धर्म न्याय है, वह दण्ड के आधार पर है । क्या तुझे नहीं मालूम कि वह भी हिंसामूलक है ?

पद्मा०—माँ ! क्षमा हो । मेरी समझ में तो मनुष्य होना, राजा होने से अच्छा है ।

छलना—तू कुटिलता की मूर्ति है । कुणीक को अयोग्य

दूसरा दृश्य

स्थान—राजकीय प्रकोष्ठ

(महाराज बिम्बसार एकाकी बैठे हुए आप ही आप कुछ विचार कर रहे हैं)

म० बिम्बसार—आह, जीवन की क्षणभंगुरता देख कर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों से लिखे हुए अदृष्ट के लेख जब धीरे धीरे लोप होने लगते हैं तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है; और जीवन-संग्राम में प्रवृत्त होकर अनेक अकाण्ड ताण्डव करता है। और फिर प्रकृति उसे अन्धकार की गुफा में ले जाकर उसका शान्तिमय, रहस्यपूर्ण भाग्य का चिट्ठा समझाने का प्रयत्न करती है। किन्तु वह कब मानता है? मनुष्य व्यर्थ महत्त्व की आकांक्षा में मरता है, अपनी नीची, किन्तु सुदृढ़ परिस्थिति में उसे संतोष नहीं होता। नीचे से ऊँचे चढ़ना ही चाहता है। चाहे फिर गिरे तो भी क्या?

छलना—(प्रवेश कर के)—और नीचे के लोग वहीं रहें। वे मानों कुछ अधिकार नहीं रखते? ऊपर वालों का यह क्या अन्याय नहीं है?

म० बिम्बसार—(चौंक कर)—कौन, छलना?

छलना—हाँ, महाराज! मैं ही हूँ।

म० बिम्बसार—तुम्हारी बात मैं नहीं समझ सका!

छलना—साधारण आँखों से भी सम्पत्ति की चेष्टा दिखाई

देती है। महाराज! इसकी बड़ी चाह है। महत्त्व का यह अर्थ नहीं है कि सब को क्षुद्र समझे।

बिम्बसार—तब।

छलना—यही कि मैं छोटी हूँ इसीलिए पटरानी नहीं हो सकी, और वह मुझे इसी बात पर अपदस्थ किया चाहती हैं।

बिम्बसार—छलना! यह क्या! तुम तो राजमाता हो। देवी वासवी के लिए थोड़ा सा भी सम्मान कर लेना तुहें विशेष नीचा नहीं बना सकता—उसने कभी तुम्हारी अवहेलना भी तो नहीं की।

छलना—इन भुलावों में मैं नहीं आ सकती। महाराज! मेरी धमनियों में लिच्छिवी रक्त बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। यह नीरव अपमान, यह सांकेतिक घृणा, मुझे सहन नहीं, और जब कि खुलकर अजात का अपकार किया जा रहा है तब तो—

बिम्बसार—ठहरो! तुम्हारा यह अभियोग अन्याय पूर्ण है। क्या इसी कारण तो बेटी पद्मावती नहीं चली गई? क्या इसी कारण तो अजात मेरी भी आज्ञा सुनने में आनाकानी करने नहीं लगा है? यह कैसा उत्पात मचाया चाहती हो?

छलना—मैं उत्पात रोकना चाहती हूँ। आपको अजात के लिये युवराज्याभिषेक की घोषणा आज ही करनी पड़ेगी।

वासवी—(प्रवेश कर के)—नाथ, मैं भी इसमें सहमत हूँ। मैं चाहती हूँ कि यह उत्सव देख कर और आपकी आज्ञा लेकर मैं कोशल जाऊँ। सुदत्त आज आया है, भाई ने मुझे बुलाया है।

बिम्बसार—कौन, देवी वासवी!

मूल स्थान है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी अच्छा नहीं। आत्मसंयम विरक्तियों की पहली सीढ़ी है। अस्तु, अब मैं तुमसे एक काम की बात कहना चाहता हूँ। क्या तुम मानोगे— क्यों महारानी?

बिम्बसार—अवश्य।

गौतम—तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो। और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो, क्यों कुणीक! तुम राज्य का कार्य मंत्रि-परिषद् की सहायता से चला सकोगे?

कुणीक—क्यों नहीं। पिता जी यदि आज्ञा दें।

गौतम—यह बोझ, जहाँ तक शीघ्र हो, यदि एक अधिकारी व्यक्ति को सौंप दिया जाय तो मानव को प्रसन्न ही होना चाहिये। क्योंकि राजन्, इससे कभी न कभी तुम हटाये जाओगे; जैसा कि विश्व भर का नियम है। फिर, यदि तुम उदारता से उसे सौंप कर छोड़ दो तो इसमें क्या दुःख—

बिम्बसार—देवता ठीक कहते हैं महाराज! यह बड़ा सुन्दर कार्य है। सरल हृदय राजश्री को सविनय कुमार के हाथों में देना चाहता है।

गौतम—(हँसकर)—ठीक है। किन्तु, काम करने के पहले किसी ने भी काम कर विचार प्रकाश नहीं किया कि यह कार्य के अनुकूल है। यह बालक तुम्हारा राज्य-विस्तार की आकांक्षा प्रकट कर रहा है। राजन्! सावधान रहो, इस गृह-विवाद और आन्तरिक अशान्ति से बचाव करो।

वासवी—भगवन् ! हम लोगों को तो एक छोटा सा उपवन पर्य्याप्त है। मैं वहीं नाथ के साथ रह कर सेवा कर सकूँगी।

बिम्बसार—तब जैसी आपकी आज्ञा। (कंचुकी से) राज-परिषद्, सभागृह में एकत्र हो। कञ्चुकी ! शीघ्रता करो।

(कंचुकी का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

स्थान—पथ

(समुद्रदत्त और देवदत्त)

देवदत्त—वत्स ! मैं तेरी कार्यवाही से प्रसन्न हूँ । हाँ, फिर क्या हुआ—क्या कुणीक को राजतिलक हो गया ?

समुद्रदत्त—शुभ मुहूर्त में सिंहासन पर बैठना ही शेष है और परिषद् का कार्य तो उसकी देख रेख में होने लगा । कुछ समय से राजकुमार ने कार्यारम्भ किया है, किन्तु गौतम यदि न चाहें तो यह काम मगध में न हो सकता ।

देवदत्त—फिर उसी ढोंगी गौतम की प्रशंसा ? अरे समुद्र, यदि मैं इतनी चेष्टा न करता तो यह सब कुछ न होता—लिच्छिवी-कुमारी में इतना मनोबल कहाँ कि वह यों कर सकती ?

स० द०—तो राजकुमार ने आपको बुलाया है, क्योंकि रानी वासवी और महाराज बिम्बिसार सम्भवतः आज ही उपवन की कुटी में चले गये होंगे । अब यह राज्य केवल राजमाता और युवराज के हाथ में है । उनकी इच्छा है कि आपके अनुरोध से राज्य पुरोहित होंगे ।

देवदत्त—(कुछ सोचता हुआ)—मैं संघ का प्रमुख विरक्त से कहाँ होऊँ । फिर भी संघोपकार के लिये भी कुछ करना ही पड़ता है ।

स० द०—किन्तु गुरुदेव ! कुणीक है बड़ा चतुर, उसके

संग रहने में भी डर मालूम पड़ता है। बिना आपकी छाया के मैं तो नहीं रह सकता।

देवदत्त—वत्स समुद्र ! तुम नहीं जानते कि कितना गुरुतर काम तुम्हारे हाथ में है। मगधराष्ट्र का उद्धार इस साधु के हाथों से करना ही होगा। जब राजा ही उसका अनुयायी है फिर जनता क्यों न भाड़ में जायगी। यह गौतम बड़ा ही कपट मुनि है। देखते नहीं हो कि यह कितना प्रभावशाली होता जा रहा है। नहीं तो मुझे इन झगड़ों से क्या काम।

स० दत्त—तब क्या आज्ञा है ?

देवदत्त—गौतम का प्रभाव मगध पर से तब तक नहीं हटेगा जब तक कि बिम्बसार राजगृह से दूर न जायगा। यह राष्ट्र का शत्रु गौतम समग्र जम्बूद्वीप को भिक्षु बनाना चाहता है और आप उनका मुखिया। इस तरह जम्बूद्वीप भर पर एक दूसरे रूप में शासन करना चाहता है।

जीवक—(सहसा प्रवेश करके)—आप विरक्त हैं और मैं गृही। किन्तु, जितना मैंने आपके मुख से अकस्मात् सुना है वही पर्याप्त है कि मैं कुछ आपको रोक कर कहूँ। सङ्घभेद करके आपने नियम तोड़ा है, उसी तरह राष्ट्र भेद कर के क्या देश का नाश कराया चाहते हैं ?

देवदत्त—यह पुरानी मण्डली का गुप्तचर है। समुद्र ! युवराज से कहो कि इसका उपाय करें। यह विद्रोही है ! इसका मुख बन्द होना चाहिये।

जीवक—ठहरो, मुझे कह लेने दो। मैं ऐसा डरपोक नह

हूँ कि जो बात तुम से कहनी है वह मैं दूसरों से कहूँ। मैं भी राजकुल का प्राचीन सेवक हूँ। तुम लोगों की यह कूटमन्त्रणा अच्छी प्रकार समझ रहा हूँ। इसका परिणाम कभी भी अच्छा नहीं। सावधान, मगध का अधःपतन—दूर नहीं है।

(जाता है)

सुदत्त—(प्रवेश करके)—आर्य समुद्रदत्त जी! कहिये, मेरे जाने का प्रबन्ध तो ठीक हो गया है न? कोशल शीघ्र पहुँचना मेरे लिये आवश्यक है। महारानी तो अब जायँगी नहीं, क्योंकि मगधनरेश ने वानप्रस्थ आश्रम का अवलम्बन लिया है, फिर मैं ठहर कर क्या करूँ?

स० दत्त—किन्तु युवराज ने तो अभी आपको ठहरने के लिये कहा है।

सुदत्त—नहीं, मुझे एक क्षण भी यहाँ ठहरना अनुचित जान पड़ता है। मैं इसीलिये आपको खोज कर मिला हूँ कि मुझे यहाँ का समाचार कोशल में शीघ्र पहुँचाना होगा। इसलिये युवराज से मेरी ओर से क्षमा माँग लेना।

(जाता है)

देवदत्त—चलो, युवराज के पास चलें।

(दोनों जाते हैं)

(दृश्य-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

स्थान—उपवन

(महाराज बिम्बसार और महारानी वासवी)

बिम्बसार—देवी, तुम कुछ समझती हो कि मनुष्य के लिये एक पुत्र का होना क्यों इतना आवश्यक समझा गया है।

वासवी—नाथ ! मैं तो समझती हूँ कि वात्सल्य नाम का जो पुनीत स्नेह है उसी के पोषण के लिये।

बिम्बसार—स्नेहमयी ! वह भी हो सकता है, किन्तु मेरे विचार में कोई और ही बात आती है।

वासवी—वह क्या नाथ ?

बिम्बसार—संसारी को त्याग, तितिक्षा या विराग होने के लिये यह पहला और सहज साधन है। क्योंकि मनुष्य अपनी ही ही आत्मा का भोग उसे भी समझता है। पुत्र को समस्त अधिकार देने में और वीतराग हो जाने से, असंतोष नहीं रह जाता। इसे बड़े-बड़े लोभी भी कर सकते हैं।

वासवी—मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आपको अधिकार से वंचित होने का दुःख नहीं।

बिम्बसार—दुःख तो नहीं देवी ! फिर भी इस कुणीक के व्यवहार से अपने अधिकार का ध्यान हो जाता है। तुम्हें विश्वास हो या न हो, किन्तु कभी-कभी याचकों का लौट जाना मेरी वेदना का कारण होता है।

वासवी—तो नाथ ! जो आपका है वही न राज्य का है, उसी

आत्मबल की महिमा किसी की प्रशंसा के बल से सिद्ध नहीं होती है। अपना अवलम्ब यह स्वयं है, इसमें मेरी इच्छा व अनिच्छा क्या है। यह दिव्य ज्योति स्वतः सबकी आँखों को आकर्षित कर रही है। देवदत्त का विरोध केवल इसमें गति दे सकेगा।

जीवक—देव! फिर भी जो ईर्ष्या की पट्टी आँखों पर चढ़ाए हैं वे इसे नहीं देख सकते। अस्तु, अब मुझे क्या आज्ञा है, क्योंकि यह जीवन अब आपही की सेवा के लिये उत्सर्ग है।

वासवी—जीवक, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी सद्बुद्धि [illegible] चिरसंगिनी रहे। महाराज को अब स्वतन्त्र वृत्ति की [illegible] है। अतः काशी प्रान्त का राजस्व, जो हमारा प्राप्य है, उसे लाने का उद्योग करना होगा। मगध साम्राज्य से हम लोग किसी प्रकार का सम्बन्ध न रक्खेंगे।

जीवक—देवी! इसके पहले कि हम और कोई कार्य करें, हमारा कौशाम्बी जाना एक बार आवश्यक है।

बिम्बसार—नहीं। जीवक! मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं, अब यह राष्ट्रीय झगड़ा मुझे नहीं रुचता।

वासवी—तब भी आपको भिक्षावृत्ति नहीं करनी होगी। अभी हम लोगों में वह त्याग, मानापमान रहित अपूर्व स्थिति नहीं आ सकेगी। फिर, जो शत्रु से भी अधिक घृणित व्यवहार करना चाहता हो, उसकी भिक्षावृत्ति पर अवलम्बन करने को हृदय नहीं कहता।

जीवक—तो सुदत्त कोशल जा चुके हैं और कौशाम्बी में भी

यह समाचार पहुँचना आवश्यक है। इसीलिये मैं कहता था और कोई बात नहीं। काशी के दण्डनायक से भी मिलता जाऊँगा।

विम्बसार—जैसी तुम लोगों की इच्छा।

वासवी—नाथ ! मैं आपसे छिपाती थी, फिर भी कहना ही पड़ा कि हम लोग वानप्रस्थ आश्रम में भी स्वतन्त्र नहीं रखे गये हैं।

विम्बसार—(निश्वास लेकर)—ऐसा !—तो कुछ हो—

(गाते हुए भिक्षुकों का प्रवेश)

न धरो कह कर इसको 'अपना'।
यह दो दिन का है सपना ॥ न धरो……
वैभव का बरसाती नाला, भरा पहाड़ी झरना।
बहो, बहाओ नहीं और को, जिससे पड़े कलपना ॥न धरो०॥
दुखियों का कुछ आँसू पोंछ लो, पड़े न आहें भरना।
लोभ छोड़कर हो उदार, बस, एक उसी को जपना ॥न धरो०॥

विम्बसार—देवी, इन्हें कुछ दो—

वासवी—और तो कुछ नहीं है—(कंकण उतार कर देती है)—प्रभु ! इन स्वर्ण और रत्नों का आँखों पर बड़ा रङ्ग रहता है, जिससे मनुष्य अपना अस्थि चर्म का शरीर तक नहीं देखने पाता—

(भिखारी जाते हैं)

(पटाक्षेप)

आत्मबल या प्रतिभा किसी की प्रशंसा के बल से /
होती है। अपना अवलम्ब यह स्वयं है, इसमें मेरी इच्छ
क्या है। यह दिव्य ज्योति स्वतः सबकी आँखों को
रही है। देवदत्त का विरोध केवल उसमें उसकी

जीवक—देव! फिर भी जो ईर्ष्या की पट्टी
हैं वे इसे नहीं देख सकते। अस्तु, अब मुझे
क्योंकि यह जीवन अब आपही की सेवा के लि

वासवी—जीवक, तुम्हारा कल्याण हो
तुम्हारी चिरसंगिनी रहे। महाराज को
आवश्यकता है। अतः काशी प्रान्त
प्राप्य है, उसे लाने का उद्योग करना होग
हम लोग किसी प्रकार का सम्बन्ध न र

! इसके पहले कि

एक बार आ

भी संसार में कुछ अपना अस्तित्व रखती हैं। अच्छा, देखूँ तो कौन खड़ा रहता है।

(नवीना का पान पात्र लेकर प्रवेश)

नवीना—महादेवी की जय हो!

मागन्धी—तुम्हें भी बुलाना होगा क्यों? महाराज नहीं आते हैं तो तुम सब महारानी हो गई हो न?

नवीना—दासी को आज्ञा मिलनी चाहिये। यह तो प्रतिक्षण श्री चरणों में रहती है। (पान कराती है)

मागन्धी—महाराज आज आवेंगे कि नहीं, इसका पता लगा कर शीघ्र आओ—

(नवीना जाती है)

मागन्धी—(आपही आप गाती है)—

अली ने क्यों भला अवहेला की।
चम्पक कली खिली सौरभ से उषा मनोहर वेला की॥
विरस दिवस; मन बहलाने को मलयज से फिर खेला की।
अली ने क्यों भला अवहेला की॥

नवीना—(प्रवेश करके)—महाराज आया ही चाहते हैं।

मागन्धी—अच्छा। आज मुझे बड़ा काम करना है नवीना! नर्तकियों को शीघ्र बुला—मेरी वेशभूषा भी ठीक है न—देख तो—

नवीना—वाह स्वामिनी, तुम्हें वेशभूषा की क्या आवश्यकता है—यह सहज सुन्दर रूप बनावटों से और भी बिगड़ जायगा।

मागन्धी—(हँसकर)—अच्छा अच्छा रहने दे और

पाँचवाँ दृश्य

(कौशाम्बी में मागन्धी का मन्दिर)

मागन्धी—(स्वगत)—इस रूप का इतना अपमान ! सो भी एक दरिद्र भिक्षु के हाथ ! उसने ब्याह करना अस्वीकार किया ! जहाँ मैं राजरानी हूँ, फिर भी वह ज्वाला न गई; यहाँ रूप का गौरव हुआ तो धन के अभाव से दरिद्र कन्या होने के अपमान की यन्त्रणा में जल रही हूँ। अच्छा इसका भी प्रतिशोध लूँगी, अब यही मेरा व्रत हुआ। वत्सराज राजा है तो मैं भी अपने हृदय की रानी हूँ। दिखला दूँगी कि स्त्रियाँ क्या कर सकती हैं। कौन है ?

(एक दासी का प्रवेश)

दासी—महादेवी ! क्या आज्ञा है ?

मागन्धी—सुनी न गई थी गौतम का समाचार लाने, वह आजकल पद्मावती के मन्दिर में भिक्षा करने आता है न ?

दासी—आता है स्वामिनी। वह तो मंत्री भवन में बैठ कर उपदेश करता है। महाराज भी वहीं बैठ कर उसकी वक्तृता सुनते हैं। बड़ा आदर करते हैं।

मागन्धी—अभी कई दिनों से इधर नहीं आते हैं। अच्छा, नर्तकियों को तो बुला ला। महारानी से भी कह दे कि वह शीघ्र आवें और समाचार देती जावें। (दासी का प्रस्थान)

मागन्धी—(स्वगत)—गौतम ! वह तुम्हारी भिक्षा मुझे यहीं से आरम्भ ? वह तुमने कभी नहीं विचारा कि तुम्हारी निर्द

भी संसार में कुछ अपना अस्तित्व रखती हैं। अच्छा, देखूँ तो कौन खड़ा रहता है।

(नवीना का पान पात्र लेकर प्रवेश)

नवीना—महादेवी की जय हो !

मागन्धी—तुम्हें भी बुलाना होगा क्यों ? महाराज नहीं आते हैं तो तुम सब महारानी हो गई हो न ?

नवीना—दासी को आज्ञा मिलनी चाहिये। यह तो प्रतिक्षण श्री चरणों में रहती है। (पान कराती है)

मागन्धी—महाराज आज आवेंगे कि नहीं, इसका पता लगा कर शीघ्र आओ—

(नवीना जाती है)

मागन्धी—(आपही आप गाती है)—

अली ने क्यों भला अवहेला की।
चम्पक कली खिली सौरभ से उषा मनोहर बेला की॥
विरस दिवस; मन बहलाने को मलयज से फिर खेला की।
अली ने क्यों भला अवहेला की॥

नवीना—(प्रवेश करके)—महाराज आया ही चाहते हैं।

मागन्धी—अच्छा। आज मुझे बड़ा काम करना है नवीना ! नर्तकियों को शीघ्र बुला—मेरी वेशभूषा भी ठीक है न—देख तो—

नवीना—वाह स्वामिनी, तुम्हें वेशभूषा की क्या आवश्यकता है—यह सहज सुन्दर रूप बनावटों से और भी बिगड़ जायगा।

मागन्धी—(हँसकर)—अच्छा अच्छा रहने दे और सब उप-

सब ठीक रहे, समझीं। कोई वस्तु अस्तव्यस्त न रहे। अव्यवस्था की कोई बात न होने पावे। उस दिन जो कहा है वह भी ठीक रहे।

नवीना—यह भी आपके कहने पर है। मैं सब अभी ठीक किये देती हूँ।

(जाती है)

(एक ओर से उदयन का प्रवेश, दूसरी ओर से नर्तकियों का प्रवेश—गान गाती हैं और मागन्धी उदयन का हाथ पकड़ कर बैठाती है।)

(नर्तकियों का गान)

प्यारे निर्मोही होकर मत हमको भूलना रे।
जानी प्यारा दयानिधि सजीव,
जिससे हमारा हृदय अनमोल,
जो बहुते दुःख, इसीसे झूलना रे।

(नर्तकी जाती है)

मागन्धी—आर्यपुत्र! क्या कई दिनों तक मेरा ध्यान भी न आया? क्या मुझसे कोई अपराध हुआ था?

उदयन—नहीं प्रिये! मगध से एक गौतम नाम के बड़े भारी महात्मा आये हैं, जो अपने को 'बुद्ध'—कहते हैं। देवी पद्मावती के मन्दिर में उनका सब निमन्त्रण होना था और वे उपदेश देते थे। वहाँ से अवकाश भी नहीं मिल सका था।

मागन्धी—(मुँह बना कर)—तब फिर मुझे क्यों पूछा आप-

उदयन—(हँस के)—नहीं नहीं वह तो मुण्डों ही मण्डली थी। कुरूपों का और कहीं ध्यान। बस! सुनने के योग्य उपदेश होता

था। अभी तो और भी होगा। हमने अनुरोध किया है कि वे कुछ दिनों तक ठहर कर कौशाम्बी में धर्म का प्रचार करें।

मागन्धी—आप पृथ्वीनाथ हैं—सब कुछ आपको सोहता है, किन्तु मैं तो अच्छी आँखों से इस गौतम को नहीं देखती। और यह सब मगध के राजमन्दिर में ही मुड़ियों का स्वांग अच्छा है, कौशाम्बी इस पाखंड से बची रहे तो बड़ा उत्तम हो। स्त्रियों के मन्दिर में उपदेश क्यों हो। क्यों उन्हें पातिव्रत छोड़कर किसी और भी धर्म की आवश्यकता है ?

(पानपात्र बढ़ाती है)

उदयन—ठहरो मागन्धी ! पुरुष का हृदय बड़ा सशंक होता है, क्या तुम इसे नहीं जानतीं ? क्या अभी अभी तुमने कुछ विषाक्त व्यङ्ग नहीं किया है ? यह मदिरा अब मैं नहीं पीऊँगा। अभी आज ही भगवान का इसी पर उपदेश हुआ है, पर मैं देखता हूँ कि मदिरा के पहिले तुमने हलाहल मेरे हृदय में उड़ेल दिया। यह व्यङ्ग सूखे ग्रास की तरह नीचे भी नहीं उतरता है और बाहर भी नहीं हो पाता है।

मागन्धी—क्षमा कीजिये नाथ! मैं प्रार्थना करती हूँ, अपने हृदय को इस हाला से तृप्त कीजिये। अपराध क्षमा हो सम्राट् ! मैं दरिद्र-कन्या हूँ। मुझे आपके पाने पर और किसी की अभिलाषा नहीं है। वे आपको पा चुकी हैं, अब उन्हें और कुछ की बलवती आकांक्षा है, चाहे उसे लोग धर्म ही क्यों न कहें। मुझे इतनी सामर्थ भी नहीं, आवश्यकता भी नहीं।

उदयन—हूँ, अच्छा देखा जायगा। (मुग्ध होकर) उठे

मागन्धी उठो। मुझे अपने हाथों से अपना प्रेम स्वरूप पात्र शीघ्र पिलाओ, फिर कोई बात होगी। (मागन्धी मदिरा पिलाती है)

उदयन—(प्रेमोन्मत्त होकर)—हाँ मागन्धी, कुछ गाओ। अब मुझे अपने मुखचन्द्र को निर्निमेष देखने दो कि मैं एक अतीन्द्रिय जगत की नक्षत्र मालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले शरदचन्द्र की कल्पना करता हुआ भावना की सीमा को लाँघ जाऊँ, और तुम्हारा सुरभि निश्वास मेरी कल्पना का आलिङ्गन करने लगे।

मागन्धी—यही तो मैं भी चाहती हूँ कि मेरी मूर्छना से मेरे प्राणनाथ की विश्वमोहिनी वीणा सहकारिणी हो। हृदय और तन्त्री एक होकर बज उठें। विश्व भर जिसके संग पर सिर हिला दे, और पागल हो जाय।

उदयन—हाँ मागन्धी! वह कल तुम्हारा बड़ा प्रभावशाली था, जिसने उदयन को तुम्हारे चरणों में लुटा दिया। (कपट की सी चेष्टा करता है) किसी दासी को भेजो कि पद्मावती के मन्दिर में से ....

मागन्धी—आर्यपुत्र की हस्तिकान्त वीणा ले आवे।

(ताली बजाती है)

उदयन—तब तक तुम कुछ सुनाओ।

(मागन्धी गान करती है—और नाचती है—)

आओ हिये में अहो प्राण प्यारे।
नैन भये निर्मोही, नहीं अब देखे बिना रहते हैं हमारे।
तुमसे होड़ लगी है, देखें कि तुम हारे कि हम हारे।
अबल मुझे [illegible]।
आओ हिये में अहो प्राण प्यारे

उदयन—हृदयेश्वरी ! कौन हमको तुमको अलग कर सकता है !—

हमारे वक्ष में बनकर हृदय, यह छवि समाएगी।
स्वयं निज माधुरी छवि का रसीला राग गाएगी॥
अलग तब चेतना हो चित्त में कुछ रह न जाएगी।
अकेले विश्व-मन्दिर में तुम्हीं को पूज पाएगी॥

मागन्धी—प्रियतम ! मैं दासी हूँ।

उदयन—नहीं, तुम आज से मेरी स्वामिनी बनो।

(दासी वीणा लेकर आती है और उदयन के सामने रखती है; उदयन के उठाने के साथ ही साँप का बच्चा निकल पड़ता है—मागन्धी चिल्ला उठती है।)

मागन्धी—पद्मावती ! तू यहाँ तक आगे बढ़ चुकी है ! जो मेरी शंका थी वह प्रत्यक्ष हुई।

उदयन—(क्रोध से उठकर खड़ा हो जाता है)—अभी इसका प्रतिशोध लूँगा, ओह ऐसा पाखंड आचरण ! असह्य।

मागन्धी—क्षमा हो सम्राट् ! आपके हाथ में न्यायदण्ड है। केवल प्रतिहिंसा से कोई कर्तव्य आपका निर्धारित न होना चाहिए, सहसा भी नहीं। प्रार्थना है कि आज आप विश्राम करें, कल विचार कर कोई काम कीजियेगा।

उदयन—नहीं। किन्तु फिर भी तुम कह रही हो, अच्छा मैं विश्राम चाहता हूँ।

मागन्धी—यहीं··

(उदयन लेटता है; मागन्धी पैर दबाती है)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

(कौशाम्बी के पथ में जीवक)

जीवक—(आप ही आप)—राजकुमारी से भेंट भी हुई और गौतम के दर्शन भी हुए, किन्तु मैं तो चकित हो गया हूँ कि मैं क्या करूँ। वासवीदेवी और उनकी कन्या पद्मावती, दोनों की एक ही तरह की अवस्था है। जिसे अपना सम्हालना ही दुष्कर है, वह वासवी भी क्या कर सकेगी। सुना है कि कई दिन से पद्मावती के मन्दिर में उदयन आते ही नहीं और व्यवहारों से कुछ असन्तुष्ट से दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि उन्हीं के परिजन होने के कारण मुझसे भी अच्छी तरह न बोले और महाराज बिम्बसार की कथा सुन कर भी कोई मत नहीं प्रकट किया। रानी आने को थीं, वह भी नहीं आईं। क्या करें, कहीं जाकर बैठें कि विश्राम हो जाय—

(दासी का प्रवेश)

दासी—भगवन्! महादेवी ने कहा है आप जीवक से कहो कि मेरी चिन्ता न करें। माताजी की देख रेख उन्हीं पर है, अतः वे शीघ्र ही मगध चले जावें। हमारे देवता जब प्रसन्न होंगे तो उनको अनुकूल करके कभी समय निकालूँगी और पिता-जी के भी चरणों का फिर दर्शन करूँगी। इस समय तो उनका आना ही कष्टकर है। महाराज की विरक्ति से मैं उनसे भी विशेष निकट नहीं आ सकती हूँ। सम्भव है कि उन्हें किसी षड्-यन्त्र की आशंका हो, क्योंकि मेरे नाते से मेरे विरुद्ध कहा कर

दिये हैं। इसलिये मुझे अपनी कन्या समझ कर क्षमा करेंगे। मैं इस समय बड़ी दुखी हो रही हूँ; कर्तव्य निर्धारण नहीं कर सकती हूँ।

जीवक—राजकुमारी से कहना कि मैं उनकी कल्याण-कामना करता हूँ। वे अपने पूर्व गौरव को लाभ करें, और मगध की कोई चिन्ता न करें। मैं केवल संदेश कहने यहाँ चला आया था। अभी मुझे शीघ्र कोशल जाना होगा। वहाँ जाकर अब मैं सब कार्य्य ठीक कर लूँगा।

दासी—बहुत अच्छा। (नमस्कार करके जाती है)

(गौतम का संघ के साथ प्रवेश)

जीवक—महाश्रमण के चरणों में अभिवादन करता हूँ।

गौतम—शान्ति मिले, धर्म में श्रद्धा हो। जीवक, तुम अच्छे तो हो? कहो मगध के क्या समाचार हैं? मगध-नरेश सकुशल तो हैं?

जीवक—तथागत! आप से क्या छिपा है। फिर भी मैं कह देना चाहता हूँ कि मगध-राजकुल में बड़ी अशान्ति है। वानप्रस्थ आश्रम में भी महाराज बिम्बसार को शान्ति नहीं है।

गौतम—जीवक!—

चञ्चल चन्द्र, सूर्य्य है चञ्चल,
चपल सभी ग्रह तारा हैं।
चञ्चल अनिल, अनल, जल, थल सब,
चञ्चल जैसे पारा हैं॥

अलग प्रकृति से अपने मानस
मन की चंचल लीला है।
प्रति क्षण प्रकृति चंचला कैसी
यह परिवर्तन शीला है॥
अणु-परमाणु, दुःख-सुख चंचल,
क्षणिक सभी सुख साधन हैं।
दृश्य सकल नश्वर परिणामी,
किसको दुख, किसको धन है॥
क्षणिक सुखों को स्थायी कहना,
दुःख मूल यह भूल महा।
चंचल मानव! क्यों भूला तू,
इस सीटी में सार कहाँ॥

जीवक—प्रभु! कृतार्थ हुआ।

गौतम—कल्याण हो! आप की रक्षा करने में, वही सुरक्षित कर लेता है। जीवक! निर्भय होकर पवित्र कर्त्तव्य करो।

(गौतम जाते हैं)

(विदूषक वसन्तक का प्रवेश)

वसन्तक—जय वैद्यराज! नमस्कार! कब एक लड्डू और पेड़ा या कचौरियाँ—इसके बाद नहीं हँसो! कभी आप हमारे नमस्कार का भी उत्तर देने के लिये मुख का व्यायाम न कीजिये। पहले लड्डू प्रदान कीजिये। विलम्ब से स्वाद नष्ट न कीजिये।

जीवक—(स्वगत)—यह विदूषक इस समय कहाँ से आ गया। अस्तु, किसी तरह यह टले।

वसन्तक—क्या आप विचार कर रहे हैं? कभी आशीर्वाद

है अजीर्ण। पाचन देना हो दो, नहीं तो हम अच्छी तरह जानते हैं कि वैद्य लोग अपने मतलब से रेचन तो अवश्य ही देंगे। अच्छा हाँ, कहो तो बुद्धि के अजीर्ण में तो रेचन ही न गुणकारी होगा? सुनो जी, मिथ्या आहार से पेट का अजीर्ण होता है और मिथ्या विहार से बुद्धि का। किन्तु, महर्षि अग्निवेश ने कहा है कि इसमें रेचन ही गुणकारी होता है।

(हँसता है)

जीवक—तुम दूसरे की तो कुछ सुनोहीगे नहीं?

वसन्तक—सुना है कि धनवन्तरि के पास एक ऐसी पुड़िया थी कि बुढ़िया युवती हो जाय और दरिद्रता का केचुल छोड़कर मणिमयी धनवती हो जाय। क्या तुम्हारे पास भी—उहूँ—नहीं है। तुम क्या जानो।

जीवक—तुम्हारा तात्पर्य क्या है? हम कुछ नहीं समझ सके।

वसन्तक—केवल खल वट्टा चलाते रहें। और मूर्खता का पुट पाक करते रहें। महाराज ने एक नई दरिद्र कन्या से ब्याह कर लिया है, उसके साथ मिथ्या विहार करते करते उन्हें बुद्धि का अजीर्ण हो गया है। महादेवी वासवदत्ता और पद्मावती जीर्ण हो गई हैं, तब कैसे मेल हो? क्या तुम उन्हें अपनी औषध से, उस विवाह करने के समय की अवस्था का नहीं बना सकते, जिसमें महाराज इस अजीर्ण से बच जायँ।

जीवक—तुम्हारे से चाटुकार और भी चाट लगा देंगे, दो चार और जुटा देंगे।

वसन्तक—इसमें तो गुरुजनों का ही अनुकरण है। श्वसुर ने दो ब्याह किये, तो दामाद ने तीन। कुछ उन्नति ही रही।

जीवक—दोनों अपने कर्मों के फल भोग रहे हैं। कहो कोई यथार्थ बात भी कहने सुनने की है या वही हँसोड़पन?

वसन्तक—घबराइये मत। बड़ी रानी वासवदत्ता पद्मावती को सहोदरा भगिनी की तरह प्यार करती हैं। उनका कोई अनिष्ट नहीं होने पायेगा। उन्होंने ही मुझे भेजा है और प्रार्थना की है कि "आर्य्यपुत्र की अवस्था आप देख रहे हैं, उनके व्यवहार पर ध्यान न दीजियेगा। पद्मावती मेरी सहोदरा है, उसकी ओर से आप निश्चिन्त रहें।" क्या करें वे लाचार हैं, नहीं तो बातों ही बात ऐसी मीठी गोली राजा को खिला देतीं। फिर तो झट उनकी गर्मी शान्त हो जाती। अच्छा आप हमारा न भूलियेगा। कोशल से समाचार भेजियेगा। नमस्कार।

(हँसता हुआ जाता है)

जीवक—अच्छा, अब हम भी कोशल जायें।

(जाता है)

सातवाँ दृश्य

स्थान—कोशल में श्रावस्ती का दरबार

(प्रसेनजित सिंहासन पर और अमात्य अनुचरगण यथास्थान बैठे हैं)

प्रसेनजित—क्या यह सब सच है ? सुदत्त, तुमने आज मुझे एक बड़ी आश्चर्यजनक बात सुनाई है। क्या सचमुच अजातशत्रु ने अपने पिता को सिंहासन से उतार कर उनका तिरस्कार किया है ?

सुदत्त—पृथ्वीनाथ ! यह उतना ही सत्य है जितना कि श्रीमान् का इस समय सिंहासन पर विराजना सत्य है। मगधनरेश से एक षड्यन्त्र द्वारा सिंहासन छीन लिया गया है ?

विरुद्धक—हमने तो सुना है कि महाराज बिम्बसार ने वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार किया है और उस अवस्था में युवराज का राज्य सँभालना अच्छा ही है।

प्रसेनजित—विरुद्धक ! क्या अजात की ऐसी परिपक्व अवस्था है कि मगध नरेश उसे साम्राज्य का बोझ उठाने की आज्ञा दें ?

विरुद्धक—पिताजी ! यदि क्षमा हो तो मैं यह कहने में संकोच न करूँगा कि युवराज को राज्यसंचालन की शिक्षा देना महाराज का कर्तव्य है।

प्रसेनजित—(उत्तेजित होकर)—और अब तुम दूसरे शब्दों में उस शिक्षा को पाने का उद्योग कर रहे हो। क्या राज्याधिकार

ऐसी प्रलोभन की वस्तु है कि कर्तव्य और पितृभक्ति एक बार ही भुला दी जाय ?

विरुद्धक—पुत्र यदि पिता से अपना अधिकार माँगे तो उसमें दोष ही क्या है ?

प्रसेनजित—(और भी उत्तेजित होकर)—अब तू अवश्य ही नीच रक्त का मिश्रण है। उस दिन, जब तेरी ननिहाल में तेरे अपमानित होने की बात मैंने सुनी थी, मुझे विश्वास नहीं हुआ, अब मुझे विश्वास हो गया कि शाक्यों के कथनानुसार तेरी माता अवश्य ही दासीपुत्री है। नहीं तो, तू इस पवित्र कोशल की विश्वविश्रुत गाथा पर पानी फेर कर अपने पिता के साथ उत्तर और प्रत्युत्तर न करता। क्या इसी कोशल में रामचन्द्र और दशरथ के सदृश पुत्र और पिता अपना उदाहरण नहीं छोड़ गये हैं ? क्या ऐसी दुराचारी भेड़ियों की तरह भयानक सन्तान अपने पिता माताओं का ही वध न करेगी ?

सुदत्त—दयानिधे ! बालक का अपराध मार्जनीय है।

विरुद्धक—चुप रहो सुदत्त ! पिता करेंगे और पुत्र वही सुनेगा। तुम चाटुकारिता करके मुझे अपमानित न करो।

प्रसेन०—अपमान ! पिता से पुत्र का अपमान ! ! क्या यह विदेशी युवक-हृदय जो नीच रक्त से कलुषित है, युवराज होने के योग्य है। बन्धुल !

बन्धुल—आज्ञा पृथ्वीनाथ।

प्रसेन०—(स्वगत)—अभी से मैं इसका पद छीन लेना चाहिये। (प्रकट)—आज से यह निर्भीक किन्तु अविनीत बालक अपने युव-

राज पद से वञ्चित किया गया। और, इसकी माता का राज-महिषी का-सा सम्मान नहीं होगा—केवल जीविका-निर्वाह के लिये इसे राजकोष से व्यय मिला करेगा।

विरुद्धक—पिताजी ! मैं न्याय चाहता हूँ।

प्रसेन०—अबोध ! तू पिता से न्याय चाहता है, यदि पक्ष निर्बल है और पुत्र अपराधी है तो किस पिता ने पुत्र के लिये न्याय किया है, परन्तु मैं यहाँ पिता नहीं राजा हूँ। तेरा बड़प्पन और महत्वकांक्षा से पूर्ण हृदय अच्छी तरह कुचल दिया जायगा—बस, चला जा।

(विरुद्धक सिर झुका कर जाता है)

अमात्य—यदि अपराध क्षमा हो तो कुछ प्रार्थना करूँ। यह न्याय नहीं है। कोशल के राजदण्ड ने कभी ऐसी व्यवस्था नहीं दी। किसी दूसरे के पुत्र का कलंकित कर्म्म सुनकर श्रीमान् उत्तेजित होकर अपने पुत्र को दण्ड दें, यह तो श्रीमान् की प्रत्यक्ष निर्बलता है। क्या श्रीमान् उसे उचित शासक नहीं बनाना चाहते ?

प्रसेन०—चुप रहो मंत्री ! जो कहता हूँ उसे करो।

(दौवारिक आता है)

दौवारिक—महाराज की जय हो। मगध से जीवक आये हैं।

प्रसेन०—जाओ लिवा लाओ।

(दौवारिक जाता है और जीवक को लिवा लाता है)

जीवक—जय हो—कोशलनरेश की !

प्रसेन०—कुशल तो है जीवक ! तुम्हारे महराज की तो सब

बातें हम सुन चुके हैं, उन्हें दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं, हाँ, कोई नया समाचार हो तो कहो।

जीवक—दयालु-देव, कोई नया समाचार नहीं है। केवल अपमान की यन्त्रणा ही महादेवी वासवी को दुखित कर सकती है। और कुछ नहीं।

प्रसेन०—तुम लोगों ने तो राजकुमार को अच्छी शिक्षा दी। अस्तु, देवी वासवी को अपमान भोगने की आवश्यकता नहीं। उन्हें अपने सपत्नी पुत्र के भिक्षान्न पर जीवन निर्वाह नहीं करना होगा। मंत्री! काशी की प्रजा के नाम एक पत्र लिखो कि वह अजात को राज-कर न देकर वासवी को अपना कर प्रदान करें। क्योंकि उसे मैंने वासवी को दिया है, उसके पुत्र का उस पर कोई अधिकार नहीं है।

जीवक—महाराज! देवी वासवी ने कुशल पूछा है और है कि इस अवस्था में मैं आर्यपुत्र को छोड़कर नहीं आ ने, इस लिये भाई कुछ अन्यथा न समझेंगे।

प्रसेन०—जीवक! यह तुम क्या कहते हो। कोशलकुमारी कुलमनस्विनी आत्मा का उदाहरण उसके समान है। दरिद्र ऋषि के साथ वह दिव्य जीवन व्यतीत कर सकती थी। क्या वासवी किसी दूसरे कोशल की राजकुमारी है? कुलशील पालन यही तो आर्यललनाओं का परमोज्ज्वल रत्न है। स्त्रियों का यही मुख्य धन है। अच्छा, जाओ विश्राम करो।

(जीवक का प्रस्थान)

(सेनापति बन्धुल का प्रवेश)

बन्धुल—प्रबलप्रताप कोशल नरेश की जय हो।

प्रसेन०—स्वागत ! सेनापते ! तुम्हारे मुख से "जय" शब्द कितना सुहावना सुनाई पड़ता है। कहो क्या समाचार है ?

बन्धुल—सम्राट्, कोशल की विजयिनी पताका वीरों के रक्त में अपने अरुणोदय का तीव्र तेज दौड़ाती है और शत्रुओं को उसी रक्त में नहाने की सूचना देती है। राजाधिराज ! हिमालय का सीमाप्रान्त बर्बर लिच्छिवियों के रक्त से और भी ठंडा कर दिया गया है। कोशल के प्रचण्ड नाम से ही शान्ति स्वयं पहरा दे रही है। यह सब श्रीचरणों का प्रताप है। अब विद्रोह का नाम भी नहीं है। विदेशी बर्बर शताब्दियों तक उधर देखने का भी साहस न करेंगे।

प्रसेन०—धन्य है विजयीवीर ! कोशल तुम्हारे ऊपर गर्व करता है और आशीर्वादपूर्ण अभिनन्दन करता है। लो यह विजय का स्मरण-चिन्ह।

(हार पहिनाता है)

सब—जय—सेनापति बन्धुल की जय !

प्रसेन०—(चौंकते हुए)—हैं !—जाओ विश्राम करो।

(बन्धुल जाता है)

आठवाँ दृश्य

स्थान—प्रकोष्ठ

(कुमार विरुद्धक उदासी बैठे हैं)

विरुद्धक—(आप ही आप)—घोर अपमान ! अनादर की पराकाष्ठा और तिरस्कार का भैरवनाद !! यह असहनीय है। धिक्कारपूर्ण कोशल देश की सीमा कभी की मेरी आँखों से दूर हो जाती। किन्तु, मेरे जीवन का विश्राम-सूत्र एक बड़े कोमल कुसुम के साथ बँध गया है। हृदय नीरव अभिलाषाओं का नीड़ हो रहा है।

अहा ! वह प्रभात का मनोहर स्वप्न विश्व-भर की मदिरा होकर मेरे उन्माद की सहकारिणी कोमल कल्पनाओं का भण्डार हो गया। मल्लिका ! तुझे मैंने अपने यौवन के पहले ग्रीष्म की अर्द्ध रात्रि में आलोकपूर्ण नक्षत्रलोक से कोमल, हीरक कुसुम के रूप में आते देखा। विश्व के असंख्य कोमल कंठ की रसीली तानें पुकार बनकर तेरा अभिनन्दन करने, तुझे सम्हाल कर उतारने के लिये नक्षत्रलोक को गई थीं। शिशिर कणों से सिक्त पवन तेरे उतरने की सीढ़ी बना था, तू धीरे धीरे उसी के सहारे उतरी—उषा ने तेरा स्वागत किया—चाटुकार मलयानिल मेरे परिमल की इच्छा से परिचायक बन गया, और बरजोरी मल्लिका के एक कोमल वृन्त का आसन देकर तेरी सेवा करने लगा। उसने खेलते खेलते तुझे उस आसन से भी उठाया और गिराया। तू धरणी पर आ ही गई। जटिल जगत की कुटिल गृहस्थी के

आलवाल में आश्चर्यपूर्ण सौन्दर्य लेकर खो हो गई। यह कैसा इन्द्रजाल था—प्रभात का वह मनोहर स्वप्न था—सेनापति वन्धुल एक हृदयहीन क्रूर सैनिक ने तुझे अपने उष्णीष का फूल बनाया। और हम तुझे अपने घेरे में रखने के लिये कटीली झाड़ी बन कर पड़े ही रहे। कोशल के आज भी हम कंटक स्वरूप हैं······।

(कोशल की रानी का प्रवेश)

रानी—छिः राजकुमार ! इसी दुर्बल हृदय से तुम संसार में कुछ कर सकोगे ! स्त्रियों की-सी रोदनशील प्रकृति लेकर तुम कोशल के सम्राट् बनोगे !

विरुद्धक—माँ, क्या कहती हो। हम आज एक तिरस्कृत युवक मात्र हैं। कहाँ का कोशल और कौन राजकुमार !

रानी—देखो, तुम मेरी सन्तान होकर मेरे सामने ऐसी पोच बातें न कहो। दासी की पुत्री होकर भी मैं राजरानी बनी और हठ से मैंने इस पद को ग्रहण किया, और तुम राजा के पुत्र होकर इतने निस्तेज और डरपोक होगे, यह कभी मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। बालक ! मानव अपनी इच्छाशक्ति से और पौरुष से ही कुछ होता है। जन्मसिद्ध तो कोई भी अधिकार, दूसरों के समर्थन का सहारा चाहता है। विश्व भर में छोटे से बड़े होना यही प्रत्यक्ष नियम है, तुम इसकी क्यों अवहेला करते हो। महत्त्वाकांक्षा के प्रदीप्त अग्निकुण्ड में कूदने को प्रस्तुत हो जाओ, विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिये कालस्वरूप बनो, साहस के साथ उनका सामना करो, फिर या तो तुम गिरोगे या वेही भाग जाँयगी। मल्लिका तो क्या, राजलक्ष्मी

मुझे धैर्य देती है। किन्तु मैं यह क्या सुन रही हूँ—स्वामी मुझसे असन्तुष्ट हैं। भला यह वेदना मुझसे कैसे सही जायगी। कई बार दासी गई किन्तु वहाँ तो तेवर ही ऐसे हैं कि किसी को प्रार्थना, अनुनय और विनय करने का साहस ही नहीं होता। फिर भी कोई चिन्ता नहीं, राजभक्त प्रजा को विद्रोही होने का भय ही क्यों हो?—

"हमारा प्रेमनिधि सुन्दर सरल है
अमृतमय है, नहीं इसमें गरल है।"

(नेपथ्य से—'भगवान बुद्ध की जय हो')

पद्मावती—अहा! संघ सहित करुणानिधान आ रहे हैं, दर्शन तो करूँ!

(खिड़की से देखती है)

(उदयन का प्रवेश)

उदयन—(क्रोध से)—पद्मावती! देख लो, यह मेरे हृदय का चित्र—तेरी वासना का निदर्शन, जा रहा है। इसीलिये न यह नया झरोखा बना है।

पद्मावती—(चौंक कर पीछे हट जाती है, हाथ जोड़कर)—प्रभु! स्वामी! क्षमा हो! यह मूर्ति मेरी वासना का चित्र नहीं है; किन्तु अपूर्व है। नाथ! जिनके मन पर आपकी भी असीम भक्ति है, उस दिगन्तव्यापी साम्राज्य को भी जिन्होंने अस्वीकार किया था—शान्ति के सहचर, करुणा के स्वामी—उन बुद्ध को, खिड़कियों की कहीं आवश्यकता नहीं।

उदयन—किन्तु मेरे प्राणों की है ? क्यों, इसीलिये न वीणा में साँप का बच्चा छिपाकर भेजा था ! तू मगध की राजकुमारी है, प्रभुत्व का विष जो तेरे रक्त में घुसा है वह कितनी ही हत्यायें कर सकता है। दुराचारिणी ! तेरी छलना का दाँव मुझ पर नहीं चला—अब तेरा अन्त है, सावधान !

(तलवार निकालता है)

पद्मावती—मैं कौशाम्बी नरेश की राजभक्त प्रजा हूँ। स्वामी, किसी छलना का आप पर अधिकार है। चाहे वह दोष मेरे सिर पर ही धरा जाय। यदि विचारक दृष्टि से मैं अपराधिनी हूँ तो दण्ड भी मुझे स्वीकार है, और वह दण्ड, वह शान्तिदायक दण्ड, यदि स्वामी के कर कमलों से मिले तो मेरा सौभाग्य है। प्रभु ! पाप का दण्ड ग्रहण कर लेने से वही पुण्य हो जाता है।

(सिर झुका कर घुटने टेकती है)

उदयन—पापीयसी ! तेरी वाणी का घुमाव-फिराव मुझे अपनी ओर नहीं आकर्षित करेगा। दुष्टे ! इस हलाहल से भरे हुए हृदय को निकालना ही होगा। प्रार्थना कर ले।

पद्मावती—मेरे नाथ ! इह जन्म के सर्वस्व ! और पर जन्म के स्वर्ग ! तुम्हीं मेरी गति हो और तुम्हीं मेरे ध्येय हो; जब तुम्हीं समक्ष हो तो प्रार्थना किसकी करूँ ? मैं प्रस्तुत हूँ।

उदयन—अच्छा।

(तलवार उठाता है, इसी समय वासवदत्ता प्रवेश करती है)

वासवदत्ता—ठहरिए ! मागन्धी की दासी नवीना आ रही है,

जिसने सब पाप स्वीकार किया है। आपको हमारे इस राज-मन्दिर की सीमा के भीतर, इस तरह हत्या करने का अधिकार नहीं है। मैं इसका विचार करूँगी और प्रमाणित कर दूँगी कि अपराधी कोई दूसरा है। वाह! इसी बुद्धि पर आप राज्य-शासन कर रहे हैं! कौन है जी? बुलाओ मागन्धी को और नवीना को।

दासी—महादेवी की जो आज्ञा।

(जाती है)

उदयन—देवी! मेरा तो हाथ ही नहीं उठता। है, यह क्या माया है!

वासवदत्ता—महाराज! यह सती का तेज है। सत्य का शासन है। हृदयहीन मनुष्य का मनोबल नहीं है। देवी पद्मावती! तू पति के अपराधों को क्षमा कर।

पद्मावती—(रो कर)—भगवन्, यह क्या? मेरे स्वामी! मेरा अपराध क्षमा हो—नहीं यह नहीं होगी।

(हाथ जोड़ा करती है)

दासी—(प्रवेश करके)—महाराज, भागिये! महादेवी हटिये, वह देखिये आग की लपट इधर ही बढ़ी आ रही है। नई महारानी के महल में आग लग गई है। और उनका पता नहीं है। अकेला भागी हुई कह रही थी कि मागन्धी अपने साथ और मुझे भी आग लगाकर, वह महाराज का अपमान भी करना चाहती थी।

उदयन—क्या! षड्यन्त्र! ओह मैं क्या अन्धा हो गया था! देवी! अपराध क्षमा हो। (पद्मावती के सामने घुटने टेकता है)

पद्मावती—उठिये ! उठिये महाराज !! दासी को लज्जित न कीजिये ।

वासवदत्ता—यह प्रणय-लीला दूसरी जगह करना—चलो हटो, यह देखो लपट फैल रही है !

(वासदत्ता दोनों का हाथ पकड़ कर खींच कर खड़ी हो जाती हैं । पर्दा फटता है; मागन्धी के महल में आग लगी हुई दिखाई पड़ती है ।)

(यवनिका-पतन)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—मगध

(अजातशत्रु की राजसभा)

अजात०—यह क्या बात है समुद्र ! मैं यह क्या सुन रहा हूँ ! प्रजा भी ऐसा कहने का साहस कर सकती है ? चींटी भी पंख लगा कर बाज के साथ उड़ना चाहती है ! फिर मैं न दूँगा यह बात जिस जिह्वा से निकली, बात के साथ ही वह भी क्यों न निकाल ली गई ? काशी का दण्डनायक कौन मूर्ख है ? तुमने उसी समय उसे बन्दी क्यों नहीं किया ?

समुद्रदत्त—सम्राट् ! मेरा कोई अपराध नहीं । काशी में बड़ा उपद्रव मचा था । शैलेन्द्र नामक किसी डाकू के आतंक से लोग पीड़ित थे । दण्डनायक कहता था कि काशी के नागरिक कहते हैं कि हम कोशल की प्रजा हैं, और······

अजात०—कहो—कहो—रुकते क्यों हो ?

समुद्र०—और हम लोग उस अत्याचारी राजा को कर नहीं देंगे जो अपने बल से पिता के सामने ही सिंहासन छीन कर बैठ गया है । और जो पीड़ित प्रजा की रक्षा भी नहीं कर सकता—उसके दुःखों को नहीं सुनता, तथा······

अजात०—हाँ, हाँ, कहो संकोच न करो।

समुद्र०—सम्राट्! इसी तरह की बहुत सी बातें वे कहते हैं, उन्हें सुनने से कोई लाभ नहीं। अब, जो आज्ञा दीजिये वह किया जाय।

अजात०—ओह! अब समझ में आया। यह काशी की प्रजा-का कण्ठ नहीं, इसमें हमारी विमाता का व्यंगस्वर है! इसका प्रति-कार आवश्यक है। इस प्रकार अजात शत्रु को कोई अपदस्थ नहीं कर सकता।

(कुछ सोचता है)

दौवारिक—(प्रवेश करके)—जय हो देव, आर्य्य देवदत्त आ रहे हैं।

(देवदत्तका प्रवेश)

देवदत्त—सम्राट्! कल्याण हो! धर्म की वृद्धि हो! शासन सुखद हो।

अजात०—नमस्कार भगवन्! आप की कृपा से सब कुछ होगा और यह उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आवश्यकता के समय आप पुकारे हुए देवता की तरह स्वतः आ जाते हैं।

देवदत्त—(बैठता हुआ)—आवश्यकता कैसी? राजन्! आप को कमी क्या है, और हम लोगों के पास आशीर्वाद के अतिरिक्त और क्या धरा है? फिर भी सुनूँ—

अजात०—कोशल को दाँत जम रहे हैं। वह काशी की प्रजा में विद्रोह कराना चाहता है। वहाँ के लोग राजस्व देना अस्वीकार करते हैं।

दूसरा

पा

संस्कार के कीचड़ में निमज्जित राजतन्त्र की पद्धति, नवीन उद्योग को, असफल कर देगी ? तिल-भर भी जो अपने पुराने विचारों से हटना नहीं चाहता, उसे अवश्य नष्ट हो जाना चाहिये, क्योंकि यह जगत ही गतिशील है।

देवदत्त—अधिकार—चाहे वे कैसे भी जर्जर और हलकी नींव के हों, अथवा अन्याय ही से क्यों न संगठित हों, सहज में नहीं छोड़े जा सकते। भद्रजन उन्हें विचार से काम में लाते हैं और हठी तथा दुराग्रही उनमें तब तक परिवर्तन भी नहीं करना चाहते, जब तक वे एक बार ही नहीं हटा दिये जायँ—

दौवारिक—(प्रवेश करके)—जय हो देव ! महामान्य परिषद् के सभ्यगण आए हैं।

अजात०—वे शीघ्र आवें।

(दौवारिक जाकर लिवा लाता है)

परिषद्गण—सम्राट की जय हो ! महात्मा को अभिवादन करता हूँ।

देवदत्त—राष्ट्र का कल्याण हो ! राजा और परिषद की श्रीवृद्धि हो ! बैठो।

परिषद०—क्या आज्ञा है ?

अजात०—आप लोग राष्ट्र के शुभचिन्तक हैं, जब । ने यह प्रकाण्ड बोझ मेरे सिर पर रखा, और मैंने इसे किया, तब इसे भी मैंने किशोर-जीवन का एक कौतुक ही था। किन्तु बात वैसी नहीं थी। मान्य महोदयो, राष्ट्र

देवदत्त—सम्राट्! गौतम आजकल इसी ओर घूम रहा है, इसी-लिये। कोई चिन्ता नहीं, राजकुमार! गौतम की कोई चाल नहीं लगेगी। यदि मुनिवेश धारण करके भी वह ऐसे साम्राज्य के षड्-यन्त्रों में लिप्त है तो मैं भी उसका प्रतिद्वन्द्वी बनूँगा। परिषद् को आह्वान करो—

अजात०—जैसी आज्ञा—(दौवारिक से)—जाओ जी, परि-षद् के सभ्यों को बुला लाओ।

(दौवारिक जाता है, फिर प्रवेश—)

दौवारिक—सम्राट् की जय हो! कोशल से कोई दूत अनुचर आया है, और दर्शन की इच्छा प्रकट करता है।

देवदत्त—उसे लिवा लाओ।

(दौवारिक बाहर चला जाता है)

दूत—मगध सम्राट् की जय हो! कुमार विरुद्धक ने यह पत्र श्रीमान् की सेवा में भेजा है।

(पत्र देता है, अजातशत्रु पत्र पढ़ कर देवदत्त को दे देते हैं)

देवदत्त—(पढ़कर)—वाह! कैसा सुयोग है! हम लोग क्यों न सहमत होंगे। दूत, तुम्हें शीघ्र पुरस्कार और पत्र मिलेगा—जाओ विश्राम करो।

(दूत जाता है)

अजात०—गुरुदेव! बड़ी अनुकूल घटना है! मगध जैसा परिवर्तन कर चुका है, वही तो कोशल भी चाहता है। हम नहीं समझते कि इन बुड्ढों को क्या पड़ी है और इन्हें सिंहासन का कितना लोभ है! क्या यह पुरानी और सिंहासन से बँधी हुई।

तरह और प्रदेश भी स्वतन्त्र होने की चेष्टा न करेंगे? क्या इसी में राष्ट्र का कल्याण है?

सब—कभी नहीं, कभी नहीं। ऐसा कदापि न होने पावेगा।

अजात०—तब आप लोग हमारा साथ देने के लिये पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं? देश को अपमान से बचाना चाहते हैं?

सब—अवश्य! राष्ट्र के कल्याण के लिये प्राण तक विसर्जन किया जा सकता है और हम सब ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।

देवदत्त—तथास्तु! क्या इसके लिये कोई नीति आप लोग निर्धारित करेंगे?

एक सभ्य—हमारी सम्मति है कि आप ही इस परिषद के प्रधान और नवीन सम्राट् को अपनी स्वतन्त्र सम्मति देकर राष्ट्रका कल्याण करें, क्योंकि आप सदृश महात्मा सर्वलोक के हित की कामना रखते हैं। राष्ट्र का उद्धार करना भी भारी परोपकार है।

अजात०—यह हमें भी स्वीकार है।

देवदत्त—मेरी सम्मति है कि साम्राज्य का सैनिक अधिकार सम्राट् को लेकर सेनापति के रूप से कोशल के साथ विग्रह और उसका दमन करने को अग्रसर होना चाहिए। समुद्रदत्त गुप्त-प्रणिधि बनकर काशी जावें और प्रजाको मगध के अनुकूल बनावें, तथा शासन-भार परिषद अपने सिर पर ले।

दूसरा सभ्य—यदि सम्राट् बिम्बसार इससे अपमान समझें?

देवदत्त—जिसने राज्य अपने हाथ से छोड़कर स्त्री की वश्यता स्वीकार कर ली, उसे इसका ध्यान भी नहीं हो ——। फिर

ऐसी गुप्त शक्ति का कार्य मुझे दिखाई पड़ रहा है जो इस शक्ति-शाली मगध राष्ट्र को उन्नत नहीं देखा चाहता। और हमने केवल इस बोझ को आप लोगों का शुभेच्छा का सहारा पाकर लिया था। आप लोग बताइये कि उस शक्ति का दमन आप लोगों को अभीष्ट है कि नहीं? या अपने राष्ट्र और सम्राट को आप लोग अपमानित करना चाहते हैं?

परिषद्—कभी नहीं। मगध का राष्ट्र सदैव गर्व से उन्नत रहेगा, और विरोधी शक्ति पददलित होगी।

देवदत्त—सभ्यो! कुछ मैं भी कहना चाहता हूँ। हमारा व्यक्तित्व भी आप लोगों का सहकारी हो सकता है और यह राष्ट्र का कल्याण करने में सहायता देने को प्रस्तुत है। इस समय जब कि कोशल का राष्ट्र अपने यौवन में पैर रख रहा है तब विद्रोह की आवश्यकता नहीं, राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को उसकी उन्नति सोचनी चाहिये। राजकुल के कौटुम्बिक झगड़ों से और राष्ट्र से कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं कि उनके पक्षपाती होकर हम अपने देश की और जाति की दुर्दशा करावें। सम्राट की विमाता बार बार विद्रोह की सूचना दे रही हैं। यद्यपि महामान्य सम्राट बिम्बसार ने अपने सब अधिकार अपने सुयोग्य सन्तान को दे दिए हैं, फिर भी ऐसी दुश्चेष्टा क्यों की जा रही है! काशी जो कि बहुत दिनों से मगध का एक शासन प्रान्त हो रहा है, वासवी देवी के षड्यन्त्र से राजस्व देना अस्वीकार करता है। वह कहता है कि मैं कोशल का दिया हुआ वासवी देवी का रक्षित धन हूँ। क्या ऐसे सुराज्य और धनी प्रदेश को मगध छोड़ देने के लिए प्रस्तुत है? क्या फिर इसी

उनके समस्त व्यवहार वासवी देवी की अनुमति से होंगे।—(सोचकर) और भी एक बात है जिसे मैं भूल गया था, वह यह कि इस कार्य को सुगम रूप से चलाने के लिये महादेवी छलना परिषद् की देख-रेख किया करें।

समुद्रदत्त—यदि आज्ञा हो तो मैं भी कुछ कहूँ।

परिषद्—हाँ, हाँ, अवश्य।

समुद्रदत्त—यह एक भी सफल नहीं होगा, जब तक देवी वासवी के हाथ पैर चलते रहेंगे। हमारी प्रार्थना है कि यदि आप लोग निश्चय राष्ट्र का कल्याण चाहते हैं तो पहिले इसका प्रबन्ध करें।

देवदत्त—तुम्हारा तात्पर्य क्या है?

समुद्रदत्त—यही कि वासवी देवी को महाराज बिम्बसार से अलग तो किया नहीं जा सकता—फिर भी आवश्यकता से बाध्य होकर राज-कुटुम्ब की रक्षा पूर्णरूप से होनी चाहिए।

तीसरा सभ्य—क्या महाराज बन्दी बनाए जायँगे? मैं ऐसी परिषद् को नमस्कार करता हूँ। यह अनर्थ है! अन्याय है!

देवदत्त—ठहरिये! आपकी शंका को स्पष्ट कीजिये और विषय के गौरव को मत भुला दीजिये। समुद्रदत्त सम्राट् बिम्बसार को बन्दी नहीं बनाया चाहता, किन्तु नियन्त्रण चाहता है। सो भी किस पर, केवल वासवी देवी पर, जो कि मगध की गुप्त शत्रु हैं। और इसका कोई दूसरा उपाय नहीं। यह किसी पर प्रकट करके साम्राज्य का तिरस्कार न किया जाय। किन्तु युवराज की राज-

मर्य्यादा कह कर अपना कार्य निकाला जाय। क्योंकि ऐसे समय में राजकुल की विशेष रक्षा होनी चाहिए।

तीसरा सभ्य—तब मेरा कोई विरोध नहीं।

अजात०—फिर, आप लोग आज की इस मन्त्रणा से सह-मत हैं?

सब—हम सबको स्वीकार है।

अजात०—तथास्तु।

(सब जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

स्थान—पथ

(मार्ग में बन्धुल)

बन्धुल—(स्वगत)—इस अभिमानी राजकुमार से तो मिलने की इच्छा भी नहीं थी—किन्तु क्या करूँ, इसे अस्वीकार भी नहीं कर सका। कोशलनरेश ने जो मुझे काशी का सामन्त बनाया वह मुझे अच्छा नहीं लगता, किन्तु राजा की आज्ञा। मुझे तो सरल और सैनिक जीवन ही रुचिकर है। यह सामन्त का आडम्बरपूर्ण पद कष्टावरण की सूचना देता है। महाराज प्रसेनजित ने कहा है कि 'शीघ्र ही मगध काशी पर अधिकार करना चाहेगा, इस लिये तुम्हारा वहाँ जाना आवश्यक है।' यहाँ का दण्डनायक तो मुझसे प्रसन्न है। अच्छा फिर देखा जायगा।—(ठहरता है)—यह समझ में नहीं आता कि एकान्त में कुमार क्यों मुझसे मिलना चाहता है!

(विरुद्धक का प्रवेश)

विरुद्धक—सेनापते! कुशल तो है?

बन्धुल—कुमार की जय हो! क्या आज्ञा है? आप क्यों अकेले हैं?

विरुद्धक—मित्र बन्धुल! मैं तो तिरस्कृत राजसन्तान हूँ। फिर अपमान सह कर, चाहे वह पिता का ही सिंहासन क्यों न हो, मुझे रुचिकर नहीं।

बन्धुल—राजकुमार! आपको सम्राट् ने निर्वासित तो नहीं

किया, फिर आप क्यों इस तरह अकेले घूमते हैं ? चलिये—काशी का सिंहासन आपको मैं दिला सकता हूँ।

विरुद्धक—नहीं, बन्धुल ! मैं दया से दिया हुआ दान नहीं चाहता। मुझे तो अधिकार चाहिये, स्वत्व चाहिये।

बन्धुल—फिर आप क्या करेंगे ?

विरुद्धक—जो कर रहा हूँ।

बन्धुल—वह क्या ?

विरुद्धक—मैं बाहुबल से उपार्जन करूँगा। मृगया करूँगा। क्षत्रिय-कुमार हूँ, चिन्ता क्या है। स्पष्ट कहता हूँ बन्धुल, मैं साहसिक हो गया हूँ। अब वही मेरी वृत्ति है। राज्य स्थापन करने के पहिले मगध के भूपाल भी तो यही करते थे !

बन्धुल—सावधान ! राजकुमार ! ऐसी दुराचार की बात न सोचिए। यदि आप इस पथ से नहीं लौटते तब मेरा कुछ कर्त्तव्य होगा, वह आपके लिए बड़ा कठोर होगा। आतङ्क को दमन करना प्रत्येक राजपुरुष का कर्म्म है। यह युवराज को भी मानना ही पड़ेगा।

विरुद्धक—मित्र बन्धुल ! तुम बड़े सरल हो। जब तुम्हारी सीमा के भीतर कोई उपद्रव होगा तो मुझे इसी तरह आह्वान कर सकते हो। किन्तु इस समय तो मैं एक दूसरी—तुम्हारे शुभ की—बात कहने आया हूँ। कुछ समझते हो कि तुमको काशी का सामन्त क्यों बनाकर भेजा गया है ?

बन्धुल—यह तो बड़ी सीधी बात है। कोशलनरेश इस राज्य को हस्तगत करना चाहते हैं, मगध भी उत्तेजित है, युद्ध की सम्भा-

बना है, इस लिये मैं यहाँ भेजा गया हूँ। मेरी वीरता पर कोशल को विश्वास है।

विरुद्धक—क्या ही अच्छा होता कि कोशल तुम्हारी बुद्धि पर भी अभिमान कर सकता, किन्तु बात कुछ दूसरी ही है।

बन्धुल—वह क्या?

विरुद्धक—वह यह कि कोशलनरेश को तुम्हारी वीरता से सन्तोष नहीं, किन्तु आतङ्क है। राजशक्ति किसी को भी इतना उन्नत नहीं देखा चाहती।

बन्धुल—फिर सामन्त बना कर मेरा क्यों सम्मान किया गया?

विरुद्धक—यह एक षड्यन्त्र है—जिसमें तुम्हारा अस्तित्व न रह जाय।

बन्धुल—विद्रोही राजकुमार! मैं तुम्हें बन्दी बनाता हूँ। सावधान हो!

(खड्ग चलाता है)

विरुद्धक—अपनी चिन्ता करो; मैं ही 'शैलेन्द्र' हूँ!

(विरुद्धक तलवार चलाता हुआ निकल जाता है; फिर, बन्धुल भी चकित होकर चला जाता है।)

(श्यामा का प्रवेश)

श्यामा—(स्वगत)—शैलेन्द्र चाहे किसी को भयानक हो, किन्तु कामिनी रमणी के हृदय में भयानक वह कदापि नहीं हो सकता! वह देखो, पवन मानो किसी डर से धीरे-धीरे साँस ले रहा है! किसी आतङ्क से पक्षी वृन्द अपने घोंसलों में जाकर छिप गए हैं!

आकाश के तारों का झुण्ड नीरव-सा है—कोई भयानक बात देखकर भी वे बोल नहीं सकते हैं, केवल आपस में इङ्गित कर रहे हैं! संसार किसी भयानक समस्या में निमग्न-सा प्रतीत होता है! किन्तु मैं शैलेन्द्र से मिलने आई हूँ—वह डाकू है तो क्या, मेरी भी अतृप्त वासना है। मागन्धी! चुप, वह नाम क्यों लेती है! मागन्धी कौशाम्बी के महल में आग लगाकर जल मरी—अब तो मैं श्यामा हूँ, जो काशी की प्रसिद्ध वारविलासिनी है। बड़े-बड़े राजपुरुष और श्रेष्ठी इसी चरण को छूकर अपने को धन्य समझते हैं। धन की कमी नहीं, मान का कुछ ठिकाना नहीं, राजरानी होकर और क्या मिलता था, केवल सापत्न्य ज्वाला की पीड़ा!

(विरुद्धक का प्रवेश)

विरुद्धक—रमणी! तुम क्यों इस घोर कानन में आई हो?

श्यामा—शैलेन्द्र! क्या तुम्हीं को बताना होगा! मेरे हृदय में जो ज्वाला उठ रही है उसे अब तुम्हारे अतिरिक्त कौन बुझावेगा? तुम मेरे स्नेह की परीक्षा चाहते थे—बोलो तुम किस प्रकार इसे देखा चाहते हो?

विरुद्धक—श्यामा, मैं डाकू हूँ। यदि तुमको इसी क्षण मार डालूँ—

श्यामा—तुम्हारे डाकूपन का ही विश्वास करके आई हूँ। यदि साधारण मनुष्य समझती—जो ऊपर से बहुत सीधा-सादा बनता है—तो मैं कदापि यहाँ आने का साहस नहीं करती। किन्तु शैलेन्द्र, लो यह अपनी नुकीली कटार इस तड़पते हुए कलेजे में भोंक दो!—(घुटने के बल बैठ जाती है)

विरुद्धक—किन्तु श्यामा! विश्वास करने वाले के साथ डाकू भी ऐसा नहीं करते, उनका भी एक धर्म है। तुमसे मिलने में इसलिये मैं डरता था कि तुम रमणी हो और वह भी वारविलासिनी, मेरा विश्वास है कि ऐसी रमणियाँ डाकुओं से भी भयानक हैं!

श्यामा—तो क्या अभी तक तुम्हें मेरा विश्वास नहीं? क्या तुम मनुष्य नहीं हो, आन्तरिक प्रेम की शीतलता ने तुम्हें कभी स्पर्श नहीं किया? क्या मेरी प्रणय-भिक्षा असफल होगी? जीवन की कृत्रिमता में दिनरात प्रेम का वणिज करते-करते क्या प्राकृतिक स्नेह का स्रोत एक बार ही सूख जाता है? क्या वारविलासिनी प्रेम करना नहीं जानती? क्या कठोर और क्रूर कर्म करते-करते तुम्हारे हृदय में चेतनलोक की गुदगुदी और कोमल स्पन्दन नाम को भी नहीं है? क्या तुम्हारा हृदय केवल मांसपिंड है! उसमें रक्त का संचार नहीं? नहीं नहीं, ऐसा नहीं, प्रियतम— (हाथ पकड़कर गाती है)—

बहुत छिपाया, उफन पड़ा अब,
सम्हालने का समय नहीं है।
अखिल विश्व में सतेज फैला,
अनल हुआ यह प्रणय नहीं है॥
कहीं तड़प कर गिरे न बिजली,
कहीं न वर्षा हो कालिमा की।
तुम्हें न पाकर शशांक मेरे!
बना शून्य यह, हृदय नहीं है॥
तड़प रही है कहीं कोकिला,
कहीं पपीहा पुकारता है।

यही विरुद क्या तुम्हें सुहाता—
कि नील नीरद सदय नहीं है ! ॥
ज़ली दीपमालिका प्राण की,
हृदय-कुटी स्वच्छ हो गई है ।
पलक-पाँवड़े बिछा चुकी हूँ,
न दूसरा और, भय नहीं है ॥
चपल निकल कर कहाँ चले अब,
इसे कुचल दो मृदुल चरण से ।
कि आह निकले दबे हृदय से,
भला कहो यह विजय नहीं है !

(दोनों हाथ में हाथ मिलाए हुए जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

मल्लिका का उपवन

(मल्लिका और महामाया)

मल्लिका—वीर हृदय युद्ध का नाम ही सुन कर नाच उठता है। शक्तिशाली भुजदण्ड, फड़कने लगते हैं। भला मेरे रोकने से वे कब रुकते थे। कठोर कर्मपथ में अपने स्वामी के पैर का कंटक भी मैं नहीं होना चाहती। यह मेरे अनुराग, सुहाग की वस्तु है। फिर भी मनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व है, जो हमारी शृंगारमंजूषा में बन्द करके नहीं रखा जा सकता। महान हृदय को केवल विलास की मदिरा पिला कर मोह लेना ही स्त्री का कर्तव्य नहीं है।

महामाया—मल्लिका, तेरा कहना ठीक है, किन्तु फिर भी—

मल्लिका—किन्तु परन्तु नहीं। वे तलवार की धार हैं, अग्नि की भयानक ज्वाला हैं, और वीरता के वरेण्य दूत हैं। मुझे विश्वास है कि रणक्षेत्र युद्ध में शत्रु भी उनके प्रचण्ड आघातों को रोकने में असमर्थ हैं। रानी! एक दिन मैंने कहा कि 'मैं नाथ के अमृत-अधर का मधु पीकर मत्त होना चाहती हूँ, पर वह सरोवर पौरुष को प्रचण्ड मार्गों में सदैव रक्षित रहता है। दूसरी जाति का कोई भी उसमें जल नहीं पीने पाता।' उसी दिन स्वामी ने कहा कि 'कभी तो तुम्हें वह जल अच्छी तरह पिला सकूँगा।'

महामाया—फिर क्या हुआ—

मल्लिका—तब तक उन्होंने मुझे लेकर नहीं चले। उस दिन

मेरा परम सौभाग्य था, सारी मल्लजाति की स्त्रियाँ मुझ पर ईर्षा करती थीं। जब मैं अकेली रथ पर बैठी थी, और मेरे वीर स्वामी ने उन पाँच सौ मल्लों से अकेले युद्ध आरंभ किया और मुझे आज्ञा दी कि 'तुम निर्भय होकर जाओ, सरोवर में स्नान करो या जल पीलो।'

महामाया—उस युद्ध में क्या हुआ?

मल्लिका—वैसी बाण-विद्या पाण्डवों की कहानी में मैंने सुनी थी। देखा, सब के धनुष कटे थे और कमरबन्द के बन्धन से ही वे चल सकते थे। जब वे समीप आकर खड्गयुद्ध में आह्वान करने लगे तब स्वामी ने कहा—'पहले अपने शरीर की अवस्था तो देखो, मैं अर्द्धमृतक घायलों पर अस्त्र नहीं चलाता।' रानी, सेनानी ने जब अपनी कमरबन्द खोली तो निर्जीव होकर गिरने लगा। यह देख सब त्रस्त हो गये। फिर उन्होंने ललकार कर कहा—'वीर मल्लगण, जाओ अस्त्र-वैद्य से अपनी चिकित्सा कराओ, बीच में जो अपनी कमरबन्द खोलेगा, उसी की यह अवस्था होगी। मल्लमहिलाओं की ईर्षा-पात्र होकर और उस सरोवर का जल स्वेच्छा से पान कर मैं कोशल लौट आई।

महामाया—आश्चर्य, ऐसी बाण-विद्या तो अब नहीं देखने में आती! ऐसी वीरता है तो विश्वास करने की बात ही है, फिर भी मल्लिका! राज-शक्ति का प्रलोभन, उसका आदर, अच्छा नहीं है, विष का लड्डू है, गन्धर्वनगर का प्रकाश है! कब क्या परिणाम होगा—निश्चित नहीं है। और इसी वीरता से महाराज को आतङ्क हो गया है। यद्यपि मैं इस समय निरादृत हूँ, फिर भी मुझसे

उनकी बातें छिपी नहीं हैं। मल्लिके! मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ, इस लिए कहती हूँ—

मल्लिका—क्या कहा चाहती हो रानी!

महामाया—यही कि गुप्त आज्ञापत्र शैलेन्द्र डाकू के नाम जा चुका है, कि यदि तुम बन्धुल का वध कर सकोगे तो तुम्हारे पिछले सब अपराध क्षमा कर दिये जायँगे, और तुम उनके स्थान पर सेनापति बनाये जाओगे।

मल्लिका—किन्तु शैलेन्द्र एक वीर पुरुष है, वह गुप्त हत्या क्यों करेगा। यदि वह प्रकट रूप से युद्ध करेगा तो मुझे निश्चय है कि कोशल का सेनापति उसे अवश्य बन्दी बनावेगा।

महामाया—किन्तु मैं जानती हूँ कि वह ऐसा करेगा, क्योंकि प्रलोभन भी बड़ी बुरी वस्तु है।

मल्लिका—रानी! बस करो। मैं प्राणनाथ को अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं कर सकती, और उनसे लौट आने का अनुरोध नहीं कर सकती। सेनापति का राजभक्त कुटुम्ब कभी विद्रोही नहीं होगा और राजा की आज्ञा से वह प्राण दे देना अपना धर्म समझेगा—इस डर कि स्वयं राजा राष्ट्र का द्रोही न प्रमाणित हो जाय।

महामाया—क्या कहूँ, मल्लिका, तुम्हें दया आती है और मुझसे बैर भी है क्योंकि मुझे पुत्रवधू बनाने की बड़ी इच्छा थी। किन्तु उसमें कोशलनरेश ने पक्षपात किया। मुझे इसका बड़ा दुःख है। इसीलिये तुम्हें सचेत करने आई थी।

मल्लिका—बस रानी बस! मेरे लिये मेरी स्थिति अच्छी है

और तुम्हारे लिये तुम्हारो। तुम्हारे दुर्विनीत राजकुमार से न व्याही जाने में, मैं अपना सौभाग्य ही समझती हूँ। दूसरे की क्यों, अपनी ही दशा देखो, कोशल की महिषी बनी थीं, अब—

महामाया—(क्रोध से)—मल्लिका, सावधान! मैं जाती हूँ—

(प्रस्थान)

मल्लिका—गर्व्वीली-स्त्री, तुझे राजपद की बड़ी अभिलाषा थी किन्तु मुझे कुछ नहीं, केवल स्त्री-सुलभ सौजन्य और समवेदना तथा कर्त्तव्य और धैर्य्य की शिक्षा मिली है। भाग्य जो कुछ दिखावे।

चौथा दृश्य

स्थान—काशी में श्यामा का गृह

(श्यामा बैठी है)

श्यामा—(स्वगत)—शैलेन्द्र! यह तुमने क्या किया—मेरी प्रणय-लता पर कैसा वज्रपात किया! अभागे बन्धुल को ही क्या पड़ी थी कि उसने द्वन्द्वयुद्ध के आह्वान को स्वीकार कर लिया! कोशल का प्रधान सेनापति छल से मारा गया है, अब उसीके हाथ में बन्दी होकर वह भी बन्दी हुआ। प्रिय शैलेन्द्र! तुम्हें किस तरह बचाऊँ—(सोचती है)

(समुद्रदत्त का प्रवेश)

समुद्रदत्त—श्यामा! तुम्हारे रूप की प्रशंसा सुनकर यहाँ चले आने का साहस हुआ है। क्या मैंने कुछ अनुचित किया?

श्यामा—(हँसती हुई)—नहीं श्रीमान्, यह तो आपका घर है। श्यामा आतिथ्य को भूल नहीं सकती—यह कुटीर आपकी सेवा के लिये सदैव प्रस्तुत है। सम्भवतः आप परदेशी हैं और इस नगर में नवागत व्यक्ति हैं। बैठिये—क्या आज्ञा है?

समुद्रदत्त—(बैठा हुआ)—हाँ सुन्दरी, मैं नवागत व्यक्ति हूँ, किन्तु एक बार और आ चुका हूँ। कभी तुम्हारे रूप की ख्याति ने मुझे पागल बनाया था। अब उसमें जलने के लिये आया हूँ। क्या इतनी भी कृपा होगी?

श्यामा—मैं आपसे विनती करती हूँ कि यहाँ आप ठहरें

डोइये और कुछ थकावट मिटाइये, फिर बातें होंगी। विजया! श्रीमान् की आज्ञा पूर्ण कर, और इन्हें विश्राम दे।

(विजया आती है और समुद्रदत्त को लिवा जाती है)

(एक दासी का प्रवेश)

दासी—स्वामिनी! दण्डनायक ने कहा है कि श्यामा की आज्ञा ही मेरे लिये सब कुछ है। हजार मोहरों की आवश्यकता नहीं, केवल एक मनुष्य उसके स्थान में चाहिये। क्योंकि सेनापति की हत्या हो गई है, और यह बात भी छिपी नहीं है कि शैलेन्द्र पकड़ा गया है। तब, उसका कोई प्रतिनिधि चाहिये, जो शूली पर रातोंरात चढ़ा दिया जाय। अभी किसी ने उसे पहचाना भी नहीं है।

श्यामा—अच्छा, सुन चुकी। जा, शीघ्र संगीत का उपक्रम ठीक कर। एक बड़े सम्भ्रान्त सज्जन आये हैं। शीघ्र जा, देर न कर—

(दासी जाती है)

(स्वगत)—स्वर्ण-पिञ्जर में भी श्यामा को क्या वह सुख मिलेगा—जो उसे हरी डालों पर कसैले फलों को चखने में मिलता है। मुक्त नीलगगन में अपने छोटे छोटे पंख फैलाकर जब वह उड़ती है तब जैसी उसकी सुरीली तान होती है, उसके सामने तो सोने के पिंजड़े में उसका गान क्रन्दन ही है। मैं उसी श्यामा की तरह जो स्वतंत्र है, राजमहल की परतंत्रता से बाहर आई हूँ। हँसूँगी और हँसाऊँगी, रोऊँगी और रुलाऊँगी! फूल की तरह आई हूँ, परिमल की तरह चली जाऊँगी। स्वप्न की चन्द्रिका में मलयानिल

की सेज पर लेटूँगी। फूलों की धूल से अङ्गराग बनाऊँगी, चाहे उसमें कितनी ही कलियाँ क्यों न कुचलनी पड़े! चाहे कितनों ही के प्राण जावें, मुझे कुछ चिन्ता नहीं। कुसुमाकर, कुसुम को कुचल देने में ही मुझे सुख है।

(समुद्रदत्त का प्रवेश)

श्यामा—(खड़ी होकर)—कोई कष्ट तो नहीं हुआ? दासियाँ दुर्विनीत होती हैं, क्षमा कीजियेगा।

समुद्रदत्त—सुन्दरियों की तुम महारानी हो और तुम वास्तव में वैसी नम्र रहती भी हो। जब जैसा गृहस्थ होगा, वैसे आतिथ्य की भी सम्भावना है—बड़ा सुख मिला, हृदय शीतल हो गया!

श्यामा—आप तो मेरी प्रशंसा करके मुझे बार बार लज्जित करते हैं।

समुद्रदत्त—सुन्दरी! मैं कह तो नहीं सकता, किन्तु मैं बिना मूल्य का दास हूँ। अनुग्रह कर कोमल कण्ठ से कुछ सुनाओ।

श्यामा—जैसी आज्ञा।

(बजाने वाले आते हैं)

(गान और नृत्य)

चला है मन्थर गति से पवन रसीला नन्दन कानन का।
नन्दन कानन का, रसीला नन्दन कानन का॥ चल०॥
फूलों पर आनन्द भैरवी गाते मधुकर वृन्द,
बिखर रही है किस यौवन की किरन, खिला अरविन्द,
ध्यान है किसके आनन का॥
नन्दन कानन का, रसीला नन्दन कानन का॥ चल०॥

उषा सुनहला मद्य पिलाती, प्रकृति बरसती फूल,
मतवाले होकर देखो तो, विधि निषेध को भूल,
आज कर लो अपने मन का।
नन्दन कानन का, रसीला नन्दन कानन का ॥ च० ॥

समुद्रदत्त—अहा! श्यामा का-सा कण्ठ भी है। सुन्दरी, तुम्हारी जैसी प्रशंसा सुनी थी तुम वैसी ही हो! और एक बार इस तीव्र मादक को और पिला दो। पागल हो जाने के लिये इन्द्रियाँ प्रस्तुत हैं।

(श्यामा इङ्गित करती है, सब जाते हैं)

श्यामा—क्षमा कीजिये, मैं इस समय बड़ी चिन्तित हूँ, इस कारण आपको प्रसन्न न कर सकी। अभी दासी ने आकर एक बात ऐसी कही है कि मेरा चित्त चञ्चल हो उठा। केवल शिष्टाचार-वश इस समय मैंने आपको गान सुनाया—

समुद्रदत्त—वह कैसी बात है, क्या मैं भी सुन सकता हूँ?

श्यामा—आप अभी तो परदेश से आ रहे हैं, मुझसे कोई घनिष्ठता भी नहीं, तब कैसे अपना हाल कहूँ!

समुद्रदत्त—सुन्दरी! यह तुम्हारा सङ्कोच व्यर्थ है।

श्यामा—मेरा भाई किसी अपराध में बंदी हुआ है। और दण्ड-नायक ने कहा है कि यदि रात भर में मेरे पास हजार मोहरें पहुँच जायँ तो मैं इसे छोड़ दूँगा, नहीं तो नहीं। (रोती है)

समुद्रदत्त—तो इसमें कौन-सी चिन्ता की बात है! मैं देता हूँ; इन्हें भेज दो।—(स्वगत)—मैं भी तो षड्यन्त्र करने आया हूँ—इसी तरह दो चार अन्तरङ्ग मित्र बनेंगे, जिसमें समयपर

काम आवे। राजकुमार से भी समझ लूँगा—कोई चिन्ता नहीं।

श्यामा—(मोहरों की थैली देकर)—तो दासी पर दया करके इसे ले जाइये, क्योंकि मैं जिस पर विश्वास करके इतना धन भेज दूँ। और, यदि आप को पहचाने जाने की शंका हो तो मैं आपका अभी वेश भी बदल दे सकती हूँ।

समुद्रदत्त—अभी मोहरें तो मेरे पास हैं, इनकी क्या आवश्यकता है।

श्यामा—आपकी कृपा है, वह भी मेरी ही हैं, किन्तु इन्हें ही ले जाइये, नहीं तो आप इसे भी वारविलासिनी की एक चाल समझियेगा।

समुद्रदत्त—भला यह कैसी बात—सुन्दरी श्यामा, तुम मेरी हँसी करती हो। तुम्हारे लिये यह प्राण प्रस्तुत है। बात इतनी है कि वह मुझे पहचानता है।

श्यामा—नहीं, यह तो मेरी पहली बात आपको माननी ही होगी। और इतना ध्यान मुझ पर न दीजिये कि मैत्री में अनुराग की गन्ध आने लगे और हम लोगों को एक दूसरे पर शंका करने का अवसर मिले। मैं आपका वेश बदल देती हूँ।

समुद्रदत्त—अच्छा प्रिये! ऐसा ही होगा। मेरा वेश-परिवर्तन करा दो।

(श्यामा वेश बदलती है और समुद्रदत्त को कपड़ा पहनाती है)

(समुद्रदत्त [illegible] अकड़ता हुआ जाता है)

श्यामा—जाओ बलि के बकरे, जाओ ! फिर न आना । मेरा शैलेन्द्र, मेरा प्यारा शैलेन्द्र !—

तुम्हारी मोहिनी छबि पर निछावर प्राण हैं मेरे ।
अखिल भूलोक बलिहारी मधुर मृदुहास पर तेरे ॥

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—सेनापति बन्धुल का गृह

(मल्लिका और दासी)

मल्लिका—संसार में स्त्रियों के लिये पति ही सब कुछ है, किन्तु हाय! आज मैं उसी सोहाग से वञ्चित हो गई हूँ! हृदय थरथरा रहा है, कण्ठ भरा आता है—एक निर्दय वेदना, सब इन्द्रियों को अचेतन और शिथिल बनाये दे रही है। हे नाथ! (हार कर और निश्वास लेकर)—हे प्रभु! मुझे बल दो—विपत्तियों को सहन करने के लिये—बल दो! मुझे विश्वास दो कि तुम्हारी शरण जाने पर कोई भय नहीं रहता। विपत्ति और दुःख उस आनन्द के दास बन जाते हैं, फिर सांसारिक आतङ्क उसे नहीं डरा सकते हैं। मैं जानती हूँ कि मानव-हृदय अपनी दुर्बलताओं में ही सबल होने का स्वांग बनाता है—किन्तु मुझे उस बनावट से, उस दम्भ से, बचा लो। शान्ति के लिये साहस दो—बल दो!!

दासी—स्वामिनि, धैर्य धारण कीजिये!

मल्लिका—सरला! धैर्य न होता तो अब तक यह हृदय फट जाता—यह शरीर निस्पन्द हो जाता! यह वैधव्य दुःख नारी जाति के लिये कैसा कठोर अभिशाप है यह किसी स्त्री को अनुभव न करना हो!

दासी—स्वामिनी, इस दुःख में भगवान ही सान्त्वना दे सकेंगे—उन्हीं का अवलम्ब है।

मल्लिका—यह सब स्मरण हो आई सरला!

दासी—क्या स्वामिनी ?

मल्लिका—सद्धर्म्म के सेनापति सारिपुत्र मौद्गलायन को कल मैं निमन्त्रण दे आई हूँ, सो आज वे आवेंगे। देख, यदि न हुआ हो तो भिक्षा का प्रबन्ध शीघ्र कर, जा शीघ्र जा। (दासी जाती है) तथागत ! तुम धन्य हो तुम्हारे उपदेशों से हृदय निर्मल हो जाता है। तुमने संसार को दुःखमय बताया और उससे छूटने का उपाय भी सिखाया। कीट से लेकर इन्द्र तक की समता घोषित की। अपवित्रों को अपनाया, दुखियों को गले लगाया और अपनी दिव्य करुणा की वर्षा से विश्व को आप्लावित किया—अमिताभ, तुम्हारी जय हो !

(सरला आती है)

सरला—स्वामिनी ! भिक्षा का आयोजन सब ठीक है। कोई चिन्ता नहीं, किन्तु········

मल्लिका—किन्तु नहीं—सरला ! मैं भी व्यवहार को जानती हूँ, पर आतिथ्य परम धर्म्म है। मैं भी नारी हूँ, नारी के हृदय में जो हाहाकार होता है, वह मैं अनुभव कर रही हूँ। शरीर की धमनियाँ खिंचने लगती हैं। जी रो उठता है, तब भी कर्तव्य करना ही होगा।

(सारिपुत्र और आनन्द का प्रवेश)

मल्लिका—जय हो ! अमिताभ की जय हो—दासी वन्दना करती है। स्वागत !

सारिपुत्र—शान्ति मिले—सन्तोष में तृप्ति हो। देवी ! हम आगये—भिक्षा प्रस्तुत है ?

मल्लिका—देव ! यथाशक्ति प्रस्तुत है । पावन कीजिये । बैठिये ।

(दासी जल लाती है, मल्लिका पैर धुलाती है । दोनों बैठते हैं और भोजन करते हैं । इसी समय स्वर्ण-पात्र दासी के हाथ से गिर कर टूट जाता है । मल्लिका उसे दूसरा लाने को कहती है ।)

आनन्द—देवि ! दासी का अपराध क्षमा करना—जितनी वस्तुएँ बनती हैं, वे सब बिगड़ने ही के लिये । यहीं, इसका परिणाम था, इसमें बेचारी दासी को कलङ्क मात्र था ।

मल्लिका—यथार्थ है ।

सारिपुत्र—आनन्द ! क्या तुमने समझा कि मल्लिका क्रुद्ध होगी ! क्या तुमने अभी नहीं पहिचाना ? स्वर्ण-पात्र टूटने से इन्हें क्या क्षोभ होगा—स्वामी के मारे जाने का समाचार अभी हम लोगों के आने के थोड़ी ही देर पहले आया है, किन्तु वह भी इन्हें अपने कर्तव्य से विचलित नहीं कर सका ! फिर, यह तो एक धातुपात्र था । (मल्लिका से)—शान्ति ! बहनों, तू संसार को पवित्र करती है । देवी, तेरा धैर्य प्रशंसनीय है । [illegible] इस मूर्तिमती अविचलता से कर्तव्य की शिक्षा लो ।

आनन्द—अर्हत्तावतो ! अपराध क्षमा हो । आज हमें विश्वास हुआ कि केवल काषाय धारण कर लेने से ही धर्म पर अधिकार नहीं हो जाता—वह चित्त शुद्धि से मिलता है ।

मल्लिका—कोशलनरेश की अनीति आज्ञा ने हत्यों की मन्त्रणा की घोषणा की है । अब मुझे यह भेद की दुर्बलता-सी दिखाई पड़ती है । मेरा उपवास भी कभी शिथिल न करेगी, वहीं उनका घर

पवित्र अधिकार है, शान्तिदायक धैर्य्य का साधन है, जीवन का विश्राम है। (पैर पकड़ती है)–महापुरुष ! आशीर्वाद दीजये कि मैं इससे विचलित न होऊँ।

सारिपुत्र—उठो देवी ! उठो ! तुम्हें मैं क्या उपदेश करूँ ? तुम्हारा चरित्र, धैर्य्य का—कर्त्तव्य का—स्वयं आदर्श है। तुम्हें अखण्ड शान्ति है। हाँ, तुम जानती हो कि तुम्हारा शत्रु कौन है—तब भी विश्वमैत्री के अनुरोध से, उससे केवल उदासीन ही न रहो, प्रत्युत द्वेष भी न रखो।

(महाराज प्रसेनजित का प्रवेश)

प्रसेन०—महास्थविर ! मैं अभिवादन करता हूँ। मल्लिकादेवी, मैं क्षमा माँगने आया हूँ।

मल्लिका—स्वागत, महाराज ! क्षमा किस बात की ?

प्रसेन०—नहीं—मैंने अपराध किया है। सेनापति बन्धुल के प्रति मेरा हृदय शुद्ध नहीं था—इसलिये उनकी हत्या का पाप मुझे भी लगता है।

मल्लिका—यह अब छिपा नहीं है महाराज ! प्रजा के साथ आप इतना छल प्रवञ्चना और कपट व्यवहार रखते हैं ! धन्य हैं।

प्रसेन०—मुझे धिक्कार दो—मुझे शाप दो—मल्लिका ! तुम्हारे मुखमण्डल पर तो ईर्षा और प्रतिहिंसा का चिन्ह भी नहीं है। जो तुम्हारी इच्छा हो, वह कहो, मैं उसे पूर्ण करूँगा—

मल्लिका—(हाथ जोड़कर)–कुछ नहीं, महाराज ! आज्ञा दीजिये कि आपके राज्य से निर्विघ्न, चली जाऊँ। किसी शांतिपूर्ण स्थान में

रहूँ। ईर्षा से आपका हृदय प्रताप के मध्यान्ह का सूर्य हो रहा। इसकी भीषणता से बचकर किसी छाया में विश्राम करूँ। और कुछ भी मैं नहीं चाहती।

सारिपुत्र—मूर्तिमती करुणे! तुम्हारी विजय है।

(राजा हाथ जोड़ता है)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

महाराज बिम्बसार का गृह

(बिम्बसार और वासवी)

बिम्बसार—रात में ताराओं का प्रभाव विशेष रहने से चन्द्र नहीं दिखाई देता है और चन्द्रमा का तेज बढ़ने से तारे सब फीके पड़ जाते हैं, क्या इसी को शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष कहते हैं? देवी! कभी तुमने इस पर विचार किया है?

वासवी—आर्य्यपुत्र! हमें तो विश्वास है कि नीला पर्दा इसका रहस्य छिपाये है, जितना चाहता है उतना ही प्रकट करता है। कभी निशाकर को छाती पर लेकर खेला करता है, कभी तारों को बिखेरता और कृष्णा कुहू के साथ क्रीड़ा करता है।

बिम्ब०—और कोमल पत्तियों को, जो अपनी डाली पर निरीह लटका करती हैं, प्रभञ्जन क्यों झिझोड़ता है?

वासवी—उसकी गति है, वह किसी को कहता नहीं है कि तुम मेरे मार्ग में अड़ो, जो साहस करता है, उसे हिलना पड़ता है। नाथ! समय भी इसी तरह चला जा रहा है, उसके लिये पहाड़ और पत्ता बराबर हैं।

बिम्ब०—फिर उसकी गति तो सम नहीं है। ऐसा क्यों?

वासवी—यही समझाने के लिये बड़े बड़े दार्शनिकों ने कई तरह की व्याख्यायें की हैं, फिर भी प्रत्येक नियमों में अपवाद लगा दिए हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपवाद नियम पर हैं या नियामक पर। सम्भवतः उसे ही लोग बवंडर कहते हैं।

बिम्बिसार—सच तो देवी! प्रत्येक असम्भावित घटना के मूल में यही बवंडर है। सच तो यह है कि विश्वभर में स्थान स्थान पर वात्याचक्र हैं; जल में उसे भँवर कहते हैं, स्थल पर उसे बवंडर कहते हैं, राज्य में विप्लव, समाज में उच्छृङ्खलता कहते हैं और धर्म में पाप कहते हैं। चाहे इन्हें नियमों का अपवाद कहो चाहे बवंडर—यही न?

(छलना का प्रवेश)

बिम्बिसार—यह लो हम लोग तो बवंडर की बातें करते थे, तुम यहाँ कैसे पहुँच गईं! राजमाता महादेवी को इस दरिद्र-कुटीर में क्या आवश्यकता हुई?

छलना—मैं बवंडर हूँ—इसी लिये जहाँ मैं चाहती हूँ असम्भावित रूप से चली जाती हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस प्रवाह में कितनी सामर्थ्य है—इसमें आवर्त उत्पन्न कर सकती हूँ कि नहीं।

वासवी—छलना! बहिन! तुमको क्या हो गया है?

छलना—प्रमाद—और क्या। अभी सन्तोष नहीं हुआ, इतने उत्पात करा चुकी हो, और भी कुछ शेष है?

वासवी—क्यों, कुणीक तो अच्छी तरह है? कुशल तो है?

छलना—क्या जानती हो! बन्धुल काशी में मारा ही गया। कोशल और मगध में युद्ध का आरम्भ हो रहा है। अजात उसमें गया है। साम्राज्य भर में आतङ्क है।

बिम्बिसार—युद्ध में क्या हुआ?—(ठहर कर)—छलना मुझे क्या?

छलना—शैलेन्द्र नाम के डाकू ने द्वन्द्व युद्ध में आह्वान करके फिर धोखा देकर कोशल के सेनापति को मार डाला। सेनापति के मर जाने से सेना घबराई थी, उसी समय अजात ने आक्रमण कर दिया और विजयी हुआ—काशी पर अधिकार हो गया।

वासवी—तब इतना घबराती क्यों हो? अजात को रण-दुर्मद आदमी बनाने के लिए ही तो तुम्हें इतनी उत्कण्ठा थी। राजकुमार को तो ऐसी उद्धत शिक्षा तुम्हीं ने दी थी। फिर उलाहना क्यों?

छलना—उलाहना क्यों न दूँ—जब कि तुमने जान बूझ कर यह विप्लव खड़ा किया है। क्या तुम इसे नहीं दबा सकती थीं, क्योंकि वह तो तुम्हारे पिता से तुम्हें मिला हुआ प्रान्त था।

वासवी—जिसने दिया था यदि वह ले ले तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं उसे न लौटा दूँ? तुम्हीं बतलाओ कि मेरा अधिकार छीन कर जब आर्य्यपुत्र ने तुम्हें दे दिया, तब भी मैंने कोई विरोध किया था?

छलना—यह ताना सुनने मैं नहीं आई हूँ। वासवी, तुमको तुम्हारी असफलता सूचित करने आई हूँ।

बिम्बसार—तो राजमाता को कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी? यह तो एक सामान्य अनुचर कर सकता था।

छलना—किन्तु वह मेरी जगह तो नहीं हो सकता था और संदेश भी अच्छी तरह से नहीं कहता। तुम्हारे मुख की प्रत्येक सिकुड़न पर इस प्रकार लक्ष्य नहीं रखता, न तो वासवी को इतना प्रसन्न ही कर सकता।

बिम्बसार—(खड़े होकर)—छलना! हमने राजदण्ड छोड़

किया है किन्तु मनुष्यता ने कभी हमें नहीं परित्याग किया है। मगध की भी सीमा इतनी है। चाहता नहीं!—चली जा। मुझे उपदेश नहीं—और विद्रोही सब!

वासवी—बहिन आओ, सिंहासन पर बैठ कर राज कार्य देखो। स्वर्ग लगाने से तुम्हें क्या सुख मिलेगा। और अधिक तुम्हें क्या कहूँ। तुम्हारी बुद्धि।

(छलना जाती है)

वासवी—(प्रार्थना करती है)—

दाता सुमति दीजिये।
मान-हृदय-भूमि करुणा से सींच कर।
बोधक विवेक बीज, अंकुरित कीजिये॥
दाता सुमति दीजिये॥

(जीवक का प्रवेश)

जीवक—जय हो देव!

बिम्बसार—जीवक, स्वागत। वत्स, तुम बड़े समय पर आये। इस समय हृदय बड़ा उद्विग्न था। कोई नया समाचार सुनाओ।

जीवक—कौशाम्बी के समाचार तो लिखकर भेज चुका हूँ। नया समाचार यह है कि कौशाम्बी का सब षड्यन्त्र खुल गया और राजकुमारी पद्मावती का दुर्दिन फिर लौट गया। और वह दुष्ट मागन्धी महल में आग लगा कर भाग गयी!

बिम्बसार—ऐसी बात! अच्छा बैठो। इतने दिनों तक कहीं सुनी नहीं, क्यों जीवक!

वासवी—और कोशल का क्या समाचार है? विरुद्धक को भाई ने क्षमा किया, या नहीं? वह आजकल कहाँ है?

जीवक—वही तो काशी का शैलेन्द्र है। उसने मगधनरेश—नहीं नहीं—कुमार कुणीक से मिलकर कोशल सेनापति बन्धुल को मार डाला, और स्वयं इधर उधर विद्रोह करता फिर रहा है।

वासवी—यह क्या है! भगवन्! बच्चों को यह क्या सूझी है? क्या यही राजकुल की दीक्षा है?

जीवक—और महाराज प्रसेनजित घायल होकर रणक्षेत्र से पलट गये। फिर कोई नई बात हुई हो तो मैं नहीं जानता।

बिम्बसार—जीवक! अब तुम विश्राम करो। अब और कोई समाचार सुनने की इच्छा नहीं है। संसार भर में विद्रोह, संघर्ष, हत्या, अभियोग, षड्यन्त्र और प्रतारणा है। यही सब तुम सुनाओगे, ऐसा मुझे निश्चय हो गया। जाने दो। एक शीतल निश्वास लेकर तुम विश्व के वात्याचक्र से अलग हो जाओ। और इस पर प्रलय के सूर्य की किरणों से तप कर गलते हुए गीले लोहे की वर्षा होने दो। अविश्वास की आँधियों को सरपट दौड़ने दो। पृथ्वी के प्राणियों में अन्याय बढ़े, जिससे दृढ़ होकर लोग अनीश्वरवादी हो जायँ और प्रति दिन नई समस्या हल करते करते कुटिल कृतघ्न जीव मूर्खता की धूल उड़ावें—और विश्वभर में इस पर एक उन्मत्त अट्टहास हो।

(उन्मत्त भाव से जाता है)

(पट-परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

स्थान—कोशल की सीमा

(मल्लिका की कुटी में मल्लिका और दीर्घकारायण)

दीर्घकारायण—नहीं, मैं कभी इसका अनुमोदन नहीं कर सकता। आप चाहे इसे बहुत धर्म समझें, किन्तु शत्रु का जीवन दान करना कभी भी लोक हितकर नहीं है।

मल्लिका—कारायण! तुम्हारा रक्त अभी बहुत खौल रहा है। तुम्हारी प्रतिहिंसा की बर्बरता देखती है, किन्तु सोचो, विचारो, जिसके हृदय में विश्वमैत्री के द्वारा करुणा का उद्रेक हुआ है, उसे अपकार का स्मरण क्या कभी अपने कर्तव्य से विचलित कर सकता है?

कारायण—आप देवी हैं। और मनुष्य से भिन्न जो केवल कल्पना के आधार पर स्थित है, वह सब प्रकार की बातें सोच सकती हैं। किन्तु, हम इस संघर्षपूर्ण जगत के जीव हैं, जिसमें कि दुःख की प्रतिध्वनि होती है। जहाँ किसी को देश में कष्ट देने पर वह बदला लेने वाले की ओर दौड़ने की चेष्टा करती है। इसलिये मैं तो नहीं कहूँगा कि इस आततायी प्रसेन और दुरंत कोशल नरेश की रक्षा आपको नहीं करनी थी।

मल्लिका—कारायण! कर्तव्य मैं अच्छी तरह जानती हूँ। बन्धुल की विश्वासघात के पीछे इससे बदला लेने का दृढ़ विचार करके तुमने कोशल षड्यंत्र कर रखा है। पर यह मन की दीक्षा

इससे बढ़ कर अन्याय नहीं। विरागी सैनिक के सामने नश्वर जीवन का बलिदान करोगी—कारायण!

कारायण—अब मैं जाता हूँ—जैसी इच्छा।

मल्लिका—ठहरो, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ। क्या तुम इस युद्ध में नहीं गये थे? क्या तुमने अपने स्वामी के जान बूझ कर कोशल को पराजित होने नहीं दिया? क्या मेरे सैनिक के समान ही तुम इस बर्ताव में बढ़े थे और अब भी कोशलनरेश की यह दुर्दशा हुई? जब तुम इस वस्तु धर्म को पालने में असमर्थ हुए, तब तुमसे और महान कार्य त्याग की क्या आशा की जाय! मुझे विश्वास है कि यदि सेनापति भी सेना अपने सत्य पर रहती तो यह दुर्घटना घटना न होने पाती।

कारायण—इसमें मेरा क्या अपराध है? जैसी सबकी, वैसी ही मेरी भी इच्छा थी। (कुटी से घायल प्रसेनजित निकलता है)

प्रसेन०—देवि! तुम्हारे उपकारों का बोझ मुझे असह्य हो रहा है। तुम्हारी शीतलता ने इस जलते हुए लोहे पर विजय प्राप्त कर ली है। बार बार क्षमा माँगने पर भी हृदय को सन्तोष नहीं होता। अब मैं श्रावस्ती जाने की आज्ञा चाहता हूँ।

मल्लिका—सम्राट्! क्या आपको मैंने बंदी कर रखा है? यह कैसा प्रश्न? बड़ी प्रसन्नता से आप जा सकते हैं।

प्रसेन०—नहीं, देवी! इस दुराचारी के पैरों में तुम्हारे उपकारों की बेड़ी और हाथों में क्षमा की हथकड़ी पड़ी है। जब तक तुम कोई आज्ञा देकर इसे मुक्त नहीं करोगी, यह चले जाने में असमर्थ है।

मल्लिका—कारायण ! यह तुम्हारे सम्राट् हैं—जाओ, इन्हें राजधानी तक सकुशल पहुँचा दो, मुझे तुम्हारे बाहुबल पर भरोसा है। और चरित्र पर भी।

प्रसेन०—कौन कारायण, सेनापति बन्धुल का भागिनेय ?

कारायण—हाँ श्रीमान् ! वही कारायण अभिवादन करता है।

प्रसेन०—कारायण ! माता ने आज्ञा दी है, तुम मुझे वहाँ पहुँचा दोगे ? देवी ! जननी की यह मूर्ति !—विपद् में बच्चे की तरह जिसने मेरी सेवा की है। क्या तुम इसकी भक्ति करते हो ? यदि तुमने इन दिव्य चरणों की भक्ति पाई है तो तुम्हारा जीवन धन्य है।

(मल्लिका का पैर पकड़ता है)

मल्लिका—उठिये सम्राट् ! उठिये। मर्य्यादा भङ्ग करने का आपको भी अधिकार नहीं है।

प्रसेन०—यदि आज्ञा हो तो मैं दीर्घकारायण को अपना सेनापति बनाऊँ और इसी रूप में स्वर्गीय सेनापति बन्धुल की प्रतिकृति देखकर अपने कुकर्म का प्रायश्चित करूँ। देवी ! मैं स्वीकार करता हूँ कि सरलहृदय बन्धुल के साथ मैंने घोर अन्याय किया है। और उसके बदले मुझे एक भी कटु शब्द न कहकर उलटा उपकार किया है, हृदय में इसकी बड़ी ज्वाला है। एक बार देवी ! तुम यह अभिशाप दे दो, जिससे नरक की ज्वाला शान्त हो जाय और सर्वांग प्राण छिपाने में सुख पावें।

मल्लिका—सम्राट् के हृदय-पटल पर जो दुश्चिन्ता-चित्र खिंच गये हैं वे क्या नहीं मिटेंगे ? यदि आपकी इच्छा है तब अन्तःकरण से कुछ स्वर्गीय सुन्दर चित्र खींचिये, जो सत्कर्म से

सरल होकर दुःखियों के हृदय को शान्ति दूँ। दूसरों को सुखी बना कर सुख पाने का अभ्यास कीजिये।

प्रसेनजित—आपका आशीर्वाद सफल हो, धन्य कारायण !

(दोनों नमस्कार करके जाते हैं)

मल्लिका—(प्रार्थना करती है)—

अधीर न हो चित्त विश्व-मोह-जाल में ॥
यह वेदना-विलोल वीचि मय समुद्र है।
है दुःख का भँवर चला कराल चाल में ॥
वह भी क्षणिक, इसे कहीं टिकाव है नहीं।
सब लौट जायँगे उसी अनन्त काल में ॥
अधीर न हो चित्त विश्व-मोह-जाल में।

अजात०—(प्रवेश करके)—कहाँ गया ? मेरे क्रोध का कन्दुक, मेरी मूर्खता का खिलौना, कहाँ गया ! रमणी ! शीघ्र बता—वह घमंडी कोशल सम्राट् कहाँ गया ?

मल्लिका—शान्त हो। राजकुमार कुणीक ! शान्त हो। तुम किसे खोजते हो ? बैठो। अहा सुन्दर मुख, इसमें भयानकता क्यों ले आते हो ? सहज सुन्दर वदन को क्यों विकृत करते हो ? शीतल हो, विश्राम लो। देखो, यह अशोक की शीतल छाया तुम्हारे हृदय को कोमल बना देगी—बैठ जाओ।

अजात०—(मुग्ध-सा बैठ जाता है)—क्या यहाँ प्रसेनजित नहीं रहा, अभी मुझे गुप्तचर ने समाचार दिया है।

मल्लिका—हाँ, इसी आश्रम में उनकी शुश्रूषा हुई है। और वे स्वस्थ होकर अभी अभी गये हैं। पर तुम उन्हें लेकर क्या करोगे ?

बीती बेला, नील गगन, तम, छिन्न विपंची, भूला प्यार,
क्षमा सदृश छिपना है फिर तो परिचय देंगे आँसू-हार॥

मुझसे परिचय न पूछो प्रियतम! न पूछो!

(शैलेन्द्र उसे प्यार करता है)

शैलेन्द्र—प्रिये! मैं बेसुध हो चला हूँ—इस संगीत के साथ सौंदर्य और सुरा ने मुझे अभिभूत कर लिया है। तुम यहीं रहो।

(दोनों पान करते हैं, श्यामा सो जाती है।)

शैलेन्द्र—(स्वगत)—काशी के उस संकीर्ण भवन में छिपकर रहते रहते चित्त घबरा गया था। समुद्रदत्त के मारे जाने का मैं ही कारण था, इस लिये प्रकाश रूप से अजातशत्रु से मिलकर कोई कार्य भी नहीं कर सकता था। इस पापी की गोद में मुँह छिपा कर कितने दिन बिताऊँ? हमारे भावी कार्यों में अब यह विघ्न स्वरूप हो रही है। यह प्रेम दिखाकर मेरी स्वतन्त्रता हरण कर रही है। अब नहीं, इस गर्त में अब नहीं गिरा रहूँगा। कर्म-पथ के कोमल और मनोहर कंटकों को कठोरता से—निर्दयता से—हटाना ही पड़ेगा। तब, आज से, अच्छा समय कहाँ—

(श्यामा सोई हुई अस्पष्ट स्वप्न देख रही है, तब भी चौंक कर उठती है—)

श्यामा—शैलेन्द्र,........

शैलेन्द्र—क्यों प्रिये!

श्यामा—प्यास लगी है।

शैलेन्द्र—क्या पियोगी?

श्यामा—जल।

शैलेन्द्र—प्रिये! जल तो नहीं है। यह शीतल पेय है, पी लो।

श्यामा—प्रिय! ओह सिर घूम रहा है। मैं बहुत पी चुकी हूँ। अब...जल...भयानक स्वप्न। क्या तुम मुझे जलते हुये हलाहल की मात्रा पिला दोगे!—(अर्द्धनिमीलित नेत्रों से देखती हुई)—

अमृत हो जायगा, विष भी पिला दो हाथ से अपने।
पलक भर रुक चुके हैं हम, डर्सा में बस लगी कँपने॥
विकल हैं इन्द्रियाँ, हाँ देखते हम रूप के सपने।
जगत विस्मृत, हृदय पुलकित लगा तव नाम है जपने॥

शैलेन्द्र—छिः! यह क्या कह रही हो? कोई स्वप्न देख रही हो क्या? लो थोड़ी पी लो। (पिला देता है)

श्यामा—मैंने अपने जीवन भर में तुम्हीं को प्यार किया है। तुम मुझे धोखा तो नहीं दोगे? ओह! कैसा भयानक स्थान है। उसी स्वप्न की तरह........

शैलेन्द्र—क्या बक रही हो। सो जाओ। विहार से थकी हो।

श्यामा—(आँख बन्द किये हुये)—क्यों यहाँ ले आये! क्या घर में सुख नहीं मिलता था?

शैलेन्द्र—कानन की हरी भरी शोभा देखकर जी बहलाना चाहिये. न कि तुम इस प्रकार बिछली जा रही हो!

श्यामा—नहीं. नहीं, मैं आँख नहीं खोलूँगी. डर लगता है, तुम्हीं पर मेरा विश्वास है। यहीं रहो।

(निद्रित होती है)

शैलेन्द्र—(स्वगत)—सो गई ! आह ! हृदय में एक वे
उठती है. ऐसी सुकुमार वस्तु ! नहीं नहीं ! किन्तु विश्वास के
पर ही इसने मनुष्यत्व के प्राण लिये ! यह नागिन है, पलते व
नहीं । और हमें अभी प्रतिशोध लेना है । दावाग्नि से बड़
खेलना है, उसमें चाहे सुकुमार शूरकुसुम हो अथवा विशाल
वृक्ष ! दावाग्नि या अन्धड़ छोटे छोटे फूलों को बचा कर न
चलेगा । तो बस......

श्यामा—(जागकर)—शैलेन्द्र ! विश्राम ! देखो यहाँ
और भयानक ...... (आँख बन्द कर लेती है)

शैलेन्द्र—अब देर क्या ! कहीं कोई आ जाय ति
(श्यामा का गला घोंटता है, वह क्रन्दन कर के शिथिल हो जाती है।)
बस चलें । पर नहीं, धन की भी आवश्यकता है—

(आभूषण उतार कर जाता है)

(गौतम बुद्ध और आनन्द का प्रवेश)

आनन्द—भगवन् ! देवदत्त ने तो अब बड़े उपद्रव मचाये ।
तथागत को कलंकित और अपमानित करने में कौन से उपाय
नहीं किये । अभी इसका फल मिलना चाहिये ।

गौतम—यह मेरा काम नहीं—वेदना और संज्ञाओं का
दुःख अनुभव करना मेरी भावनाओं के बाहर है । हमें अपने कर्तव्य
दूसरों के मलिन कर्मों को छिपाने से भी जि
पड़ती है ।

अभी [illegible] को लेकर उसने छिपा

पर अपवाद लगाना चाहा था—केवल आपकी मर्यादा गिरा देने की इच्छा से।

गौतम—किन्तु सत्य-सूर्य को कहाँ कोई चलनी से ढक लेगा? इस क्षणिक प्रवाह में सब विलीन हो जायेंगे। मुझे अकार्य करने से क्या लाभ! चिञ्चा का ही देखो, अब यह बात खुल गई कि उसे गर्भ नहीं है, वह केवल मुझे अपवाद लगाना चाहती थी। तभी उसकी कैसी दुर्गति हुई। शुद्ध बुद्धि की प्रेरणा से सत्कर्म करते रहना चाहिये। दूसरों की ओर उदासीन हो जाना ही शत्रुता की पराकाष्ठा है। आनन्द! दूसरों का अपकार सोचने से अपना हृदय भी कलुषित होता है।

आनन्द—यथार्थ है प्रभो,—(श्यामा के शव को देख कर)—अरे यह क्या! चलिये गुरुदेव! यहाँ से शीघ्र हट चलिये। देखिये, अभी यहाँ कोई काण्ड संघटित हुआ है।

गौतम—अरे यह तो कोई स्त्री है, उठाओ आनन्द! इसे सहायता की आवश्यकता है।

आनन्द—तथागत! आपके प्रतिद्वन्द्वी इससे बड़ा लाभ उठावेंगे। यह मृतक स्त्री विहार में ले जाकर क्या आप कलङ्कित होना चाहते हैं?

गौतम—क्या करुणा का आदेश कलङ्क के डर से भूल जाओगे? यदि हम लोगों की सेवा से यह कष्ट से मुक्त हो गई तब? और मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि यह मरी नहीं है। आनन्द, विलम्ब न करो। यदि यह यों ही पड़ी रही तब भी तो विहार के पीछे ही है। उस अपवाद से हम लोग कहाँ बचेंगे।

आनन्द—प्रभु, जैसी आज्ञा !

(उसे उठा कर दोनों जाते हैं)

(शैलेन्द्र का प्रवेश)

शैलेन्द्र—यह कोई क्या ले गया। वहाँ मैं भी उसके पद में जो कुछ था, ले आया। अब कहाँ चलना चाहिये। काशी तो अपनी ही राजधानी है पर वहाँ अब एक क्षण भी मैं नहीं ठहरूँगा। माता ने भेंट दी मुर्गी, इसका हाथ भी हाथ लगा। बस वाराणसी से निकला हुआ एक बार ही गाँव राजगृह। वहाँ अजात से मिलना। किन्तु अब कोई चिन्ता नहीं, रुपया तो रही नहीं, कौन बहुत माँगेगा। मनुष्यत्व के लिये मैं भी कोई काम कर दूँगा। तो चलूँ; इस संघाराम में कुछ भीड़-भी एकत्र हो रही है, यहाँ ठहरना अब ठीक नहीं।

(जाता है)

(एक भिक्षु का प्रवेश)

भिक्षु—आश्चर्य ! यह युग्म भी जो यहीं और इतनी ही देर में मुझसे के जिसका झगड़ा फैला दिया था। समस्त विहार क्षुब्ध हो उठा था। कुछ समता को बचाने के लिये यह रहा था कि, एकाएक गौतम ने ही चले आए आज्ञा। इस दृश्य से गौतम की ही कोई बुरी इच्छा थी। किन्तु उसके आश्चर्य होने ही सब के मुँह में कालिमा छा गयी। और अब तो लोग कहते हैं कि भगवान हैं, गौतम बड़े महात्मा हैं, जो दूसरों को भी क्षमा किया ! मनुष्य के हृदय से भी मैं बातों की तरह तो बड़े हैं। चलूँ, देखूँ, कोई कुछ कहता है।

(जाता है)

[रानी शक्तिमती और कारायण का प्रवेश]

रानी—क्यों सेनापति, तुम तो इस पद से बड़े सन्तुष्ट होगे ? अपने मातुल की दशा तो अब तुम्हें भूल गई होगी ?

कारायण—नहीं रानी ! वह भी इस जन्म में भूलने की बात है ! क्या करूँ, मल्लिकादेवी की आज्ञा से मैंने यह पद ग्रहण किया है; किन्तु हृदय में बड़ी ज्वाला धधक रही है !

रानी—पर तुम्हें इसके लिये चेष्टा करनी चाहिये । न कि स्त्रियों की तरह रोने से काम चलेगा । विरुद्धक ने तुमसे भेंट की थी ?

कारायण—कुमार बड़े साहसी हैं ? मुझसे कहने लगे कि "अभी मैंने एक हत्या की है और उससे मुझे यह धन मिला है, सो तुम्हें गुप्त सेना-संगठन के लिये देता हूँ । मैं फिर उद्योग में जाता हूँ । यदि तुमने धोखा दिया तो विचार लेना शैलेन्द्र किसी पर दया करना नहीं जानता ।" उस समय तो मैं केवल बात ही सुनकर स्तब्ध रह गया । बस स्वीकार-सूचक सिर हिला दिया—रानी ! उस युवक को देखकर मेरी आत्मा काँपती है !

रानी—अच्छा, तो प्रबन्ध ठीक करो । और सहायता मैं दूँगी । पर यहाँ भी अच्छा खेल हुआ······

कारायण—हम लोग भी तो उसी को देखने आये थे. आश्चर्य, क्या जाने, कैसे वह स्त्री जी उठी ! नहीं तो अभी ही गौतम का सब महात्मापन भूल जाता ।

रानी—अच्छा, अब हम लोगों को शीघ्र चलना चाहिये,

सब उनका नगर की ओर आ रही है। देखो, सावधान रहना, मेरा रथ भी बाहर खड़ा होगा।

कारायण—कुछ सेना अपने मित्र की सम्मुख कर लेता हूँ जो कि राजसेना से बराबर मिली-जुली रहेगी और काम के समय हमारी आज्ञा मानेगी।

रानी—और भी एक बात कहनी है—कौशाम्बी का दूत आया है, सम्भवतः कौशाम्बी और कोशल की सेना मिलकर मगध पर आक्रमण करेगी। उस समय तुम क्या करोगे?

कारायण—उस समय दोनों की लाट नगर पर आक्रमण करूँगा और सम्भवतः इस पर अवश्य अजात को बन्दी बनाऊँगा। आने पर भी राज अपने घर में मिलेगी।

रानी—(कुछ सोच कर)—अच्छा।

(दोनों जाते हैं)

(पटपरिवर्तन)

नवाँ दृश्य

स्थान—कौशाम्बी का पथ

[जीवक और वसंतक]

वसंतक—(हँसता हुआ)—तब इसमें मेरा क्या दोष ?

जीवक—जब तुम दिनरात राजा के समीप रहते हो और उनके सहचर बनने का तुम्हें गर्व है, तब तुमने क्यों नहीं ऐसी चेष्टा की—

वसंतक—कि राजा बिगड़ जायँ ?

जीवक—अरे बिगड़ जायँ कि सुधर जायँ। ऐसी बुद्धि को........

वसंतक—धिक्कार है। जो इतना भी न समझे कि राजा अपने चाहे पीछे सुधर जाँय, अभी तो हमसे बिगड़ जायँगे।

जीवक—तब तुम क्या करते हो ?

वसंतक—दिनरात सीधा किया करते हैं। बिजली की रेखा की तरह टेढ़ी जो राजशक्ति है उसे दिनरात सँवार कर, पुचकार कर, भयभीत होकर, प्रशंसा करके सीधा करते हैं। नहीं तो न जाने किस पर वह गिरे ! फिर महाराज ! पृथ्वीनाथ ! यथार्थ है, आश्चर्य ! इत्यादि के छाव से पुटपाक........

जीवक—चुप रहो, बको मत, तुम्हारे ऐसे मूर्खों ने ही तो सभा को बिगाड़ रक्खा है ! जब देखो परिहास !

वसंतक—परिहास नहीं अट्टहास। उसके बिना क्या लोगों का अन्न पचता है ! क्या बल है—तुम्हारी बूटी में ? अरे ! जो

मैं सभा को बनाऊँ; तो क्या अपने को बिगाड़ूँ ? और फिर मार, लेकर पृथ्वी देवता को भोगदान करता फिरूँ ? देखो न अपना मुख आदर्श में—चले थे सभा बनाने, राजा को सुधारने ! इस समय भी......

जीवक—तो इससे क्या ? हम अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं, दुःख से विचलित तो होते नहीं—

क्षोभ सुख का नहीं, न तो डर है।
प्राण कर्त्तव्य पर निछावर है॥

वसन्तक—तो इससे क्या ? हम भी अपना पेट पालते हैं, अपनी आकांक्षा बनाये रहते हैं; किसी और के दुःख से हम भी हम तो मग्न नहीं होते—एक क्षण भर भी नहीं, समझे ? और काम कितना ताल पर और सुरीला करते हैं, सो भी जानते हो ? जहाँ कहीं आज्ञा हो कि "इसे मारो", हम तत्काल ही मन पर सुरीले स्वर में बोलते हैं कि "ठीक है"

जीवक—जाओ जाओ !

वसन्तक—क्या तुम्हारे नाम को ? अरे जाओ, तुम्हारे-से स्वार्थी, जो राजा को समझाना चाहते हैं। कहीं बकवास करके कुछ भी कह जाना और अपने मुख को कष्ट देना। जो जीभ अच्छा स्वाद लेने के लिये बनी है, उसे व्यर्थ हिलाना-डुलाना ! अरे, यहाँ तो जब राजा ने एक लम्बी चौड़ी आज्ञा सुनाई, उसी समय "यथार्थ है श्रीमान्" कहकर निर्दिष्ट होकर गर्दन झुका ली—बस हँस दी। यहीं तो राज्यकाल में बैठने कौन देता है !

जीवक—तुम लोग-जैसे चाटुकारों का भी कैसा अधम जीवन है !

वसन्तक—और आप-जैसे लोगों का उत्तम ? कोई माने चाहे न माने—ढोंग कहाये जाते हैं ! मनुष्यता का ठीका लिये फिरते हैं !

जीवक—अच्छा भाई, तुम्हारा कहना ठीक है, जाओ, किसी प्रकार से पिंड भी छूटे ।

वसन्तक—पद्मावती देवी ने कहा है कि आर्य जीवक से कह देना कि अजात का कोई अनिष्ट न होने पावेगा, केवल शिक्षा के लिये ही यह आयोजन है । और माताजी से विनती से कह देंगे कि पद्मावती बहुत शीघ्र उनका दर्शन श्रावस्ती में करेगी ।

जीवक—अच्छा तो क्या युद्ध होना अवश्य है ?

वसन्तक—हाँ जी, प्रसेनजित भी प्रस्तुत हैं । महाराज उदयन से मन्त्रणा ठीक हो गई है । आक्रमण हुआ ही चाहता है । महाराज बिम्बसार की समुचित सेवा करने अब यहाँ हम लोग आया ही चाहते हैं, पत्तल परसा रहे—समझ न ?

जीवक—अरे पेटू, युद्ध में तो कौवे गिद्ध पेट भरते हैं !

वसन्तक—और इस आपस के युद्ध में ब्राह्मण भोजन करेंगे, ऐसी तो शास्त्र की आज्ञा ही है । क्योंकि युद्ध से प्रायश्चित्त लगता है । फिर बिना, ह-ह-ह-ह ....

जीवक—जाओ महाराज, दण्डवत !

(दोनों जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

दसवाँ दृश्य

मगध में छलना का प्रकोष्ठ

(छलना और अजातशत्रु)

छलना—बस थोड़ी सी सफलता मिलते ही अकर्मण्यता ने सन्तोष का मोदक खिला दिया। पेट भर गया। क्या तुम भूल गए कि "सन्तुष्टाश्च महीपतिः।"

अजात०—माँ! क्षमा हो। युद्ध में बड़ी भयानकता होती है, कितनी स्त्रियाँ अनाथ हो जाती हैं। सैनिक जीवन का महत्वमय चित्र न जाने किस षड्यन्त्रकारी मस्तिष्क की भयानक कल्पना है। सभ्यता से जो पाशव वृत्ति मानव की दबी हुई रहती है उसीको इसमें उत्तेजना मिलती है। युद्धस्थल का दृश्य बड़ा भीषण होता है!

छलना—कायर! आँखें बन्द कर ले! यदि ऐसा ही था तो क्यों वृद्ध बाप को हटा कर सिंहासन पर बैठा?

अजात०—तुम्हारी आज्ञा से माँ, मैं आज सिंहासन छोड़ कर पिता की सेवा करने को प्रस्तुत हूँ।

देवदत्त—(प्रवेश करके)—किन्तु अब बहुत दूर तक बढ़ आये, लौटने का समय नहीं है। कुमार देखो, कोशल और कौशाम्बी की सम्मिलित सेना मगध का नाश करने आ रही है!

छलना—यदि उसी समय कोशल पर आक्रमण हो जाता तो आज इसका अवसर ही न मिलता।

देवदत्त—समुद्रदत्त का मारा जाना आपको अधीर कर रहा है

है, किन्तु क्या समुद्रदत्त के ही भरोसे आप सम्राट् बने थे ? यह निर्बोध विलासी—इसका ऐसा परिणाम तो होना ही था। पौरुष करनेवालों को अपने बल पर विश्वास करना चाहिये। युवराज !

छलना—अयँ ! मैंने बड़ा भरोसा किया था कि तुम्हें भरत-खण्ड का सम्राट् देखूँगी और वीरप्रसूता होकर एक बार गर्व से तुमसे चरण-वन्दना कराऊँगी, किन्तु आह ! पति-सेवा से भी वंचित हुई और पुत्र का……

देवदत्त—नहीं, नहीं, राजमाता दुखी न हों। अजातशत्रु तुम्हारा अमूल्य वीररत्न है। रण की भयानकता देख कर तो वीर धनञ्जय का भी हृदय विचल गया था !

(सहसा विरुद्धक का प्रवेश)

विरुद्धक—माता, वन्दना करता हूँ। भाई अजात ! क्या तुम विश्वास करोगे—मैं साहसिक हो गया हूँ ! किन्तु मैं भी राजपुत्र हूँ, और हमारा तुम्हारा ध्येय एक ही है।

अजात०—तुम्हें ! कभी नहीं, तुम्हारे षडयन्त्र से समुद्रदत्त मारा गया, और……

विरुद्धक—और कोशलनरेश को पाकर भी मेरे कहने से छोड़ दिया, क्यों ? यदि मेरी मन्त्रणा लेते तो आज तुम मगध और मैं कोशल में सम्राट होकर सुख भोगता। किन्तु, उस दुष्टा मल्लिका ने तुम्हें……

अजात०—हाँ, उसमें तो मेरा ही दोष था। किन्तु अब तो

मगध और कोशल आपस में शत्रु हैं, फिर हम तुम पर विश्वास क्यों करें ?

विरुद्धक—केवल यह बात विश्वास करने की है। यही कि तुम कोशल नहीं चाहते और मैं काशी-सहित मगध नहीं चाहता। देखो, सेनापति कारायण ही कोशल की सेना का नेता है। वह मिला हुआ है, और विराट अग्निमित्र वाहिनी क्षुब्ध समुद्र के समान गर्जन कर रही है। मैं खड्ग लेकर शपथ करता हूँ कि कौशाम्बी की सेना पर मैं आक्रमण करूँगा और दीर्घकारायण के कारण ही निर्बल कोशल सेना है उस पर तुम; जिसमें तुम्हें विश्वास बना रहे। यही समझो है, विलम्ब ठीक नहीं।

अजात—कुमार विरुद्धक ! क्या तुम अपने पिता के विरुद्ध खड़े होगे ? और फिर विश्वास पर······

विरुद्धक—जब मैं पदच्युत और अपमानित व्यक्ति हूँ तब मुझे अधिकार है कि सैनिक कार्य में किसी का भी पक्ष ग्रहण कर सकूँ, क्योंकि यही क्षत्रिय की धर्मसम्मत आजीविका है। हाँ, पिता से मैं स्वयं नहीं लड़ूँगा। इसी लिये कौशाम्बी की सेना पर मैं आक्रमण करना चाहता हूँ।

देवदत्त और समुद्र—अब अविश्वास का समय नहीं है। सम्राट् शीघ्र ही प्रस्थान करें !

अजात०—जैसी आपकी आज्ञा।

(सबका मिलकर और जाते हैं)

(कोशल में अजात, विरुद्धक और प्रसेन की युद्धयात्रा)

(पटपरिवर्तन)

११

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—मगध में राजकीय भवन

(छलना और देवदत्त)

छलना—धूर्त ! तेरी प्रवञ्चना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई, पुत्र बन्दी होकर विदेश को गया और पति को मैं स्वयं बन्दी बनाये हूँ । पाखण्ड, तूने ही यह चक्र रचा है !

देवदत्त—नारी ! क्या तुझे राजशक्ति का घमंड हो गया है, जो हम परिव्राजकों से इस तरह की बातें करती है ? तेरी राज-लिप्सा और महत्वाकांक्षा ने ही तुझसे सब कुछ कराया—तू दूसरे पर क्यों दोषारोपण करती है, क्या मुझे ही राज्य भोगना है ?

छलना—पाखण्ड ! जब तूने धर्म के नाम पर उत्तेजित करके मुझे कुशिक्षा दी, तब नहीं सोचा । गौतम को कलंकित करने के लिये कौन श्रावस्ती गया था ? और किसने मतवाला हाथी दौड़ा कर उनके प्राण लेने की चेष्टा की थी ? ओह ! मैं किस भ्रान्ति में थी ! जी चाहता है कि इस नरपिशाच मूर्त्ति को अभी मिट्टी में मिला दूँ ! प्रतिहारी !

प्रतिहारी—(प्रवेश करके) महादेवी की जय हो । क्या आज्ञा है ?

छलना—अभी इस मुँड़िये को बन्दी बनाओ और वासवी को पकड़ रक्खो।

(प्रतिहारी इङ्गित करता है, देवदत्त बन्दी होता है)

देवदत्त—इसका फल तुझे मिलेगा।

छलना—पाखण्ड, क्षत्रिणी को भय दिखाता है! आकाश की बहती नदी को हाथों से रोक लेना चाहता है! देवदत्त! ध्यान रखना इस अवस्था में नारी क्षमा नहीं कर सकती है! अब तेरा अभिशाप मुझे नहीं डरा सकता। तू अपने कर्म भोगने के लिये प्रस्तुत हो जा।

(वासवी का प्रवेश)

छलना—अब तो तुम्हारा हृदय सन्तुष्ट हुआ?

वासवी—क्या कहती हो छलना? आर्यपुत्र बन्दी हो गया तो तुम्हें सुख मिला, यह बात कैसे तुम्हारे मुख से निकली? क्या वह तेरा पुत्र नहीं है?

छलना—ओह! मुँह की मधुर! अब तेरी बातों से मैं ठगी नहीं जाने की! और इतना साहस, इतनी कूट-चातुरी! आज मैं तेरे हृदय को निकाल लूँगी, जिसमें यह सब भरे थे। वासवि, सावधान! मैं भूखी सिंहनी हो रही हूँ।

वासवी—छलना! इसका मुझे डर नहीं है। यदि तुम्हें इसमें कोई सुख मिले तो सुख करो। किन्तु एक बात और विचार लो—कोसल नरेश के लोग जब मेरी यह अवस्था सुनेंगे तो अजात को और शीघ्र कुछ कर देने के बदले कोई दूसरा काण्ड न उपस्थित करें।

छलना—तब क्या होगा ?

वासवी—जो होगा वह तो भविष्य के गर्भ में है, किन्तु मुझे एक बार कोशल अनिच्छा-पूर्वक भी जाना ही होगा और अजात को ले आने की चेष्टा करनी ही होगी।

छलना—यह और भी अच्छा बतलाया—जो हाथ का है उसे भी जाने दूँ ! क्यों वासवी ! पद्मावती को पढ़ा रही हो !

वासवी—मलिन छलना ! मुझे तुम्हारी बुद्धि पर खेद होता है। क्या मैं अपने प्राण को डरती हूँ या सुख-भोग के लिये जा रही हूँ ? ऐसी अवस्था में आर्यपुत्र को मैं छोड़ कर चली जाऊँगी, ऐसा भी तुम्हें अब तक विश्वास है ? मेरा उद्देश्य केवल विवाद मिटाने का है।

छलना—इसका प्रमाण ?

वासवी—प्रमाण आर्यपुत्र हैं। छलना, चौंको मत। तुम भी उन्हीं की परिणीता पत्नी हो तब भी, तुम्हारे विश्वास के लिये मैं उन्हें तुम्हारी देख-रेख में छोड़ जाऊँगी। हाँ इतनी प्रार्थना है कि उन्हें कोई कष्ट न होने पावे, और क्या कहूँ, वे ही तुम्हारे भी पति हैं। हाँ, देवदत्त को मुक्त कर दो। चाहे इसने कितना भी हम लोगों का अनिष्ट-चिंतन किया है, फिर भी परिव्राजक माननीय है।

छलना—(प्रहरियों से)—छोड़ दो इसको, फिर काला मुख मगध में न दिखावे। (प्रहरी छोड़ते हैं, देवदत्त जाता है)

वासवी—देखो, राज्य में आतङ्क न फैलने पावे। दृढ़ होकर मगध का शासन करना ! किसी को कष्ट भी न हो। और प्यारी

छलना ! यदि हो सके तो आर्यपुत्र की सेवा करके नारी-जन्म सार्थक कर लेना।

छलना—माँ जी! बहिन!—(रोने लगती है)—मेरा कुणीक मुझे दे दो, मैं भीख माँगती हूँ। मैं नहीं जानती थी कि निसर्ग से इतनी करुणा और इतना स्नेह सन्तान के लिये, इस हृदय में संचित था। यदि जानती होती तो इस निष्ठुरता का स्वाँग न करती।

वासवी—रानी ! यही जो जानती कि नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है, तो पुरुषार्थ का ढोंग क्यों करती। रो मत, बहिन! मैं जाती हूँ, तू यहीं समझ कि कुणीक ननिहाल गया है।

छलना—तुम जाओ।

(पटपरिवर्तन)

दूसरा दृश्य

स्थान—कोशल के राजमहल से लगा हुआ बन्दीगृह

(वाजिरा का प्रवेश)

वाजिरा—(आप ही आप)—क्या विप्लव हो रहा है! प्रकृति से विद्रोह करके नये साधनों के लिये कितना प्रयास होता है। अन्धी जनता अन्धेरे में दौड़ रही है। इतनी छीना-झपटी, इतना स्वार्थ-साधन कि सहज प्राप्य अन्तरात्मा के सुख-शान्ति को भी लोग खो बैठते हैं! भाई भाई से लड़ रहा है, पुत्र पिता से विद्रोह कर रहा है; स्त्रियाँ पतियों पर प्रेम नहीं किन्तु शासन करना चाहती हैं! मनुष्य मनुष्य के प्राण लेने के लिये शस्त्र-कला को प्रधान गुण समझने लगा है और उन गाथाओं को लेकर कवि कविता करते हैं! बर्बर रक्त में और भी उष्णता उत्पन्न करते हैं! राजमन्दिर बन्दीगृह में बदल गए हैं! कभी सौहार्द्र से जिसका आतिथ्य कर सकते थे उसे बन्दी बना कर रक्खा है! सुन्दर राजकुमार! कितनी सरलता और निर्भीकता इस विशाल भाल पर अङ्कित हैं! आहा! जीवन धन्य हो गया है! अन्तःकरण में एक नवीन स्फूर्ति हो गई है। एक नवीन संसार इसमें बन गया है। यही, यदि प्रेम है तो अवश्य स्पृहणीय है, जीवन की सार्थकता है, कितनी सहानुभूति कितनी कोमलता का आनन्द मिलने लगा है!

एक दिन पिता जी का पैर पकड़ कर प्रार्थना करूँगी कि इस बन्दी को छोड़ दो। किसी राष्ट्र का शासक होने के बदले इस प्रेम के शासन में रहने से मैं प्रसन्न रहूँगी। मनोरम सुकुमार

वृत्तियों को दासानुदास हृदय में आविर्भाव तिरोभाव होते देखूँगी और आँख बन्द कर लूँगी।

(गाना)

हमारे जीवन का उल्लास हमारे जीवन-धन का रोष।
हमारी करुणा के दो बूँद, मिले एकत्र, हुआ सन्तोष॥
दृष्टि को कुछ भी रुकने दो, न यों चमका दो अपनी कान्ति।
देखने दो क्षण भर भी तो, मिले सौन्दर्य देख कर शान्ति॥
नहीं तो निष्ठुरता का अन्त चला दो चपल नयन के बाण।
हृदय छिद जाय, विकल बेचैन वेदना से हो उसका त्राण॥

(खिड़की खुलती है, वहीं अजातशत्रु दिखाई देते हैं)

अजात०—इस श्यामा रजनी में चन्द्रमा की सुकुमार किरणों सी तुम कौन हो? सुन्दरी, कई दिन मैंने देखा, मुझे भ्रम हुआ कि यह स्वप्न है! किन्तु नहीं, अब मुझे विश्वास हुआ है कि भगवान ने करुणा की मूर्ति मेरे लिये भेजी है। और इस बन्दीगृह में भी कोई ऐसी अलक्ष्य इच्छा कौशल करा रही है।

वाजिरा—राजकुमार! मेरा परिचय पाने पर तुम फिर क्रोधित होगे और फिर मेरे आने पर मुँह फेर लोगे—तब मैं बहुत दुखित हूँगी। हम लोग इसी प्रकार अपरिचित रहें। अभिलाषायें नये रूप धरेंगी, किन्तु वे नीरव रहें। उन्हें बोलने का अधिकार न हो! बस, तुम मुझे एक करुण-दृष्टि से देखो और मैं कृतज्ञता के फूल तुम्हारे चरणों पर अनुराग भरी सेवा करूँगी।

अजात०—सुन्दरी! यह अभिनय कई दिन हो चुका। अब मैं नहीं सह सकता हूँ। तुम्हें अपना परिचय देना ही होगा।

बाजिरा—ओह ! राजकुमार ! मेरा परिचय पाकर तुम सन्तुष्ट न होगे, नहीं तो मैं छिपाती क्यों ?

अजात०—तुम चाहे प्रसेनजित की ही कन्या क्यों न हो किन्तु मैं तुमसे असन्तुष्ट न हूँगा; मेरी समस्त श्रद्धा अकारण तुम्हारे चरणों पर लोटने लगी है सुन्दरी !

बाजिरा—मैं वही हूँ राजकुमार ! कोशल की राजकुमारी। मेरा ही नाम बाजिरा है।

अजात०—सुनता था कि प्रेम द्रोह को पराजित करता है। आज विश्वास भी हो गया। तुम्हारे उदार प्रेम ने मेरे विद्रोही हृदय को विजित कर लिया! अब यदि कोशलनरेश मुझे बन्दी-गृह से छोड़ दें तब भी······

बाजिरा—तब भी क्या ?

अजात०—मैं कैसे जा सकूँगा !

बाजिरा—(ताली निकाल कर जंगला खोलती है, अजात बाहर आता है) अब तुम जा सकते हो। पिता की सारी झिड़कियाँ मैं सुन लूँगी। उनका समस्त क्रोध मैं अपने वक्ष पर वहन करूँगी। राजकुमार ! अब तुम मुक्त हो, जाओ !

अजात०—यह तो नहीं हो सकता। इस उपकार के प्रतिफल में तुम्हें अपने पिता से तिरस्कार और भर्त्सना ही मिलेगी सुन्दरी ! लो, अब यह तुम्हारा चिरबन्दी मुक्त होने की चेष्टा भी न करेगा।

बाजिरा—प्रिय राजकुमार ! तुम्हारी इच्छा, किन्तु फिर मैं अपने को रोक न सकूँगी और हृदय की दुर्बलता या प्रेम की सबलता हमें व्यथित करेगी।

अजात०—राजकुमारी ! तो हम लोग एक दूसरे को प्रेम करने के अयोग्य हैं, ऐसा कोई मूर्ख भी नहीं कहेगा ।

बाजिरा—तब प्राणनाथ ! मैं अपना सर्वस्व तुम्हें समर्पण करती हूँ ।—(अपनी माला पहनाती है)

अजात०—मैं अपने समेत इसे तुम्हें लौटा देता हूँ प्रिये ! हम तुम अभिन्न हैं । यह जंगली हिरन—इस स्वर्गीय संगीत पर—चौकड़ी भरना भूल गया है । अब यह तुम्हारे प्रेम-पाश में पूर्ण रूप से बद्ध है ।—(अँगूठी पहनाता है)

(कारायक्ष का सहसा प्रवेश)

कारायक्ष—यह क्या ! बन्दीगृह में प्रेमलीला ! राजकुमारी ! तुम कैसे यहाँ आई हो ? क्या राजनियम की कठोरता भूल गई हो ?

बाजिरा—इसका उत्तर देने के लिये मैं बाध्य नहीं हूँ ।

कारायक्ष—किन्तु यह कारागृह एक उत्तर की आशा करता है । वह तुम्हें नहीं, तो महाराज के समक्ष देना ही होगा । बन्दी, तुमने ऐसा साहस क्यों किया ?

अजात०—मैं तुमसे बात भी नहीं किया चाहता । तुम्हारे महाराज से मेरी प्रतिद्वन्द्विता है—उनके सेवकों से नहीं ।

कारायक्ष—राजकुमारी ! मैं कठोर कर्तव्य के लिये बाध्य हूँ । इस बन्दी राजकुमार को ढिठाई की शिक्षा देनी ही होगी ।

बाजिरा—क्यों, बन्दी भाग तो गया नहीं, भागने का प्रयास भी इसने नहीं किया, फिर ?

कारायक्ष—फिर, अब ! मेरी साधारण आज्ञाओं पर तुमने

पानी फेर दिया है। और, भयानक प्रतिहिंसा मेरे हृदय में जल रही है। इस युद्ध में मैंने तुम्हारे लिये ही······

बाजिरा—सावधान ! कारायण ! अपनी जीभ बन्द करो !

अजात०—कारायण ! यदि तुम्हें कुछ बाहुबल का भरोसा हो तो द्वन्द्व-युद्ध के लिये मैं आह्वान करता हूँ।

कारायण—मुझे कोई चिन्ता नहीं, यदि राजकुमारी की प्रतिमा पर आँच न पहुँचे। क्योंकि मेरे हृदय में अभी भी स्थान है। क्यों राजकुमारी, क्या कहती हो ?

अजात०—तब और किसी समय। मैं अपने स्थान पर जाता हूँ। जाओ राजनन्दिनी !

बाजिरा—किन्तु कारायण ! मैं आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ।

कारायण—यहाँ तक ! कोई चिन्ता नहीं। इस समय तो चलिये, क्योंकि महाराज आया ही चाहते हैं।

(अजात अपने बंगले में जाता है, एक ओर कारायण और राजकुमारी बाजिरा जाती हैं, दूसरी ओर से वासवी और प्रसेनजित का प्रवेश)

प्रसेन०—क्यों कुणीक, अब क्या इच्छा है ?

वासवी—न न, भाई ! खोल दो। इसे मैं इस तरह देख कर घात नहीं कर सकती हूँ। मेरा बच्चा कुणीक···

प्रसेन०—बहिन ! जैसा कहो। (खोल देता है, वासवी अङ्क में ले लेती है।)

अजात०—कौन ! विमाता ? नहीं तुम मेरी माँ हो ! माँ ! इतनी ठंढी गोद तो मेरी माँ की भी नहीं है। आज मैंने जननी

की शीतलता का अनुभव किया है। मैंने बड़ा अपमान किया है माँ! क्या तुम क्षमा करोगी?

वासवी—वत्स कुणीक! वह अपमान भी क्या अब मुझे स्मरण है। तुम्हारी माता, तुम्हारी माँ नहीं है, मैं तुम्हारी माँ हूँ। वह तो छलना है, उसने मेरे सुकुमार बच्चे को बन्दी-गृह में भेज दिया! चलो, मैं तुम्हें शीघ्र मगध के सिंहासन पर भेजना चाहती हूँ, तुम इसके जाने का प्रबंध कर दो।

अजात०—नहीं माँ, अब कुछ दिन इस विशुद्ध वायु में अज्ञात रहने दो। तुम्हारी शीतल छाया का विश्राम मुझसे अभी नहीं छोड़ा जायगा।

(घुटने टेक देता है, वासवी अभय का हाथ रखती है।)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

स्थान—कानन का प्रान्त

विरुद्धक—आर्द्र हृदय में करुण-कल्पना के समान आकाश में कादम्बिनी घिरी आ रही है। पवन के उन्मत्त आलिङ्गन से तरुराजि सिहर उठती है। झुलसी हुई कामनाएँ मन में अङ्कुरित हो रही हैं। क्यों? जलदागमन से? आह!

अलका की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलम्ब,
सुखी सो रहे थे इतने दिन, कैसे हे नीरद निकुरम्ब!
बरस पड़े क्यों आज अचानक सरसिज कानन का संकोच,
अरे जलद में भी यह ज्वाला! झुके हुए क्यों किसका सोच?
किस निष्ठुर ठंडे हृत्तल में जमे रहे तुम बर्फ समान?
पिघल रहे हो किस गर्मी से? हे करुणा के जीवन-प्रान!
चपला की व्याकुलता लेकर चातक का ले करुण-विलाप,
तारा-आँसू पोंछ गगन के, रोते हो किस दुख से आप?
किस मानस-निधि में न बुझा था बड़वानल जिससे बन भाप;
प्रणय-प्रभाकर-कर से चढ़कर इस अनन्त का करते माप।
क्यों जुगनू का दीप जला, है पथ में पुष्प और आलोक
किस समाधि पर बरसे आँसू किसका है यह शीतल-शोक?
थके प्रवासी बनजारों से लौटे हो मन्थर गति से;
किस अतीत की प्रणय-पिपासा जगती चपला-सी स्मृति से?

(मल्लिका का प्रवेश)

मल्लिका—तुम्हें सुखी देखकर मैं सन्तुष्ट हुई कुमार!

विरुद्धक—मल्लिका! मैं तो आज टहलता-टहलता कुटी में

इतनी दूर चला आया हूँ। अब तो मैं स्वस्थ हो गया, तुम्हारी इस सेवा से मैं जीवन भर उऋण नहीं हूँगा।

मल्लिका—अच्छा किया। तुम्हें स्वस्थ देख कर मैं बहुत प्रसन्न हुई। अब तुम अपनी राजधानी को लौट जा सकते हो; किन्तु मैं तुमसे कुछ कहूँगी।

विरुद्धक—मुझे भी तुमसे बहुत कुछ कहना है। मेरे हृदय में बड़ी खलबली है। यह तो तुम्हें विदित था कि सेनापति बन्धुल को मैंने ही मारा है, और तब भी तुमने इतनी सेवा की! इससे क्या मैं समझूँ! क्या मेरी शंका निर्मूल नहीं है? कह दो मल्लिका!

मल्लिका—विरुद्धक! तुम उसका मनमाना अर्थ लगाने का भ्रम मत करो। तुमने समझा होगा कि मल्लिका का हृदय कुछ विचलित है; छिः! तुम राजकुमार हो न, इसीलिये। अच्छी बात क्या तुम्हारे मस्तिष्क में कभी आई ही नहीं? मल्लिका उस मिट्टी की नहीं है, जिसकी तुम समझते हो।

विरुद्धक—किन्तु मल्लिका! अतीत में तुम्हारे ही लिए मेरा बलवान् विचार। पिता ने जब तुमसे मेरा प्यार करने को अस्वीकार किया, उसी समय से मैं पिता से विरुद्ध हुआ और उस विद्रोह का यह परिणाम हुआ।

मल्लिका—इसके लिये मैं कृतज्ञ नहीं हो सकती। राजकुमार! कर्तव्यका जीवन भी अपनापन लिये अपना अर्थ रखता। और वह मेरी स्त्रियोचित की परीक्षा थी। अब इससे मैं स्वतंत्र हो गई अब तुम्हें आने का विचार हुआ। विरुद्धक, तुम्हारा रक्त-कलुषित हाथ मैं छू भी नहीं सकती। तुमने अतिशयता के

निरीह प्राणियों का किसी की भूल पर निर्दयता से वध किया, तुमने पिता से विद्रोह किया, विश्वासघात किया, एक वीर को धोखा देकर मार डाला और अपने देश के, जन्मभूमि के, विरुद्ध अस्त्र ग्रहण किया ! तुम्हारे ऐसा नीच और कौन होगा ? किन्तु यह सब जानकर भी मैं तुम्हें रणक्षेत्र से सेवा के लिये उठा लाई ।

विरुद्धक—तब क्यों नहीं मर जाने दिया ? क्यों कलंकी जीवन बचाया—और अब......

मल्लिका—तुम इस लिए नहीं बचाए गए कि फिर भी एक विरक्त नारी पर बलात्कार और लम्पटता का अभिनय करो । जीवन इसलिए मिला है कि पिछले कुकर्मों का प्रायश्चित्त करो । अपनेको सुधारो ।

(श्यामा का प्रवेश)

श्यामा—और भी एक भयानक अभियोग है—इस नर-राक्षस पर ! इसने एक विश्वास करने वाली स्त्री पर अत्याचार किया है, उसकी हत्या की है ! क्यों शैलेन्द्र ?

विरुद्धक—अरे श्यामा !

श्यामा—हाँ शैलेन्द्र, तुम्हारी नीचता का प्रत्यक्ष उदाहरण मैं अभी जीवित हूँ । निर्दय ! चाण्डाल के समान क्रूर कर्म तुमने किया ! ओह, जिसके लिये मैंने राजधानी का सुख छोड़ दिया, अपने वैभव पर ठोकर लगा दी, उसका ऐसा आचरण ! प्रति-हिंसा तो नहीं, पश्चात्ताप से सारा शरीर भस्म हो रहा है !

मल्लिका—विरुद्धक ! यह क्या, जो रमणी तुम्हें प्यार करती है, जिसने सर्वस्व तुम्हें अर्पण किया था, उसे भी तुम न

सके ! तुम्हारे सदृश क्षुद्र भी ऐसे स्त्री-रत्न को पाने का प्रयास करता है—जिसकी छाया भी छू सकने के योग्य नहीं हो !

विरुद्धक—मैं इसे वैसा समझता था।

श्यामा—और मैं तुम्हें डाकू समझने पर भी चाहने लगी थी ! इतना तुम्हारे ऊपर मेरा विश्वास था। तब मैं नहीं जानती थी कि तुम कोशल के राजकुमार हो।

मल्लिका—यदि तुम प्रेम का प्रतिदान नहीं जानते हो तो क्यों एक सुकुमार नारी-हृदय को लेकर उसे पैरों से क्यों रौंदते हो ? विरुद्धक ! अब लौटो, यदि हो सके तो इसे अपनाओ !

श्यामा—नहीं देवी ! अब मैं आपकी सेवा करूँगी, राजसुख मैं बहुत भोग चुकी हूँ। अब मुझे राजकुमार विरुद्धक का सिंहासन भी अभीष्ट नहीं है, मैं तो शैलेन्द्र डाकू को चाहती थी।

विरुद्धक—श्यामा, अब मैं सब तरह से प्रस्तुत हूँ और क्षमा भी माँगता हूँ।

श्यामा—अब तुम्हें, तुम्हारा हृदय अभिशाप देगा, यदि मैं क्षमा कर भी दूँ। किन्तु नहीं, विरुद्धक ! अभी तुमसे अहङ्कार गया नहीं है।

मल्लिका—राजकुमार ! जाओ, कोशल लौट जाओ, और, यदि तुम्हें अपने पिता के क्षमा करने से डर लगता हो तो मैं तुम्हारी ओर से क्षमा माँगूँगी। मुझे विश्वास है कि महाराज मेरी बात रक्खेंगे।

विरुद्धक—देवबाला ! करुणा की मूर्ति ! मैं किस प्रकार ... अवश्य चलूँगा। जिस तरह तुमने, तुम्हारी कृपा ने, बचाया है।

प्राण बचाऊँ! देवी, ऐसे भी जन इसी संसार में हैं, तभी तो यह भ्रम-पूर्ण संसार ठहरा है।—(पैरों पर गिरता है)—देवि! अधम का अपराध क्षमा करो।

मल्लिका—उठो राजकुमार! चलो, मैं भी आपकी चलती हूँ। महाराज प्रसेनजित से तुम्हारे अपराधों को क्षमा करा दूँगी और इस कोशल को छोड़ कर चली जाऊँगी। श्यामा, तब तक तुम इस कुटीर पर रहो, मैं आती हूँ।

(दोनों जाते हैं)

श्यामा—जैसी आज्ञा।—(स्वगत)—जिसे काल्पनिक देवत्व कहते हैं—वही तो सम्पूर्ण मनुष्यता है। मागंधी, धिक्कार है तुझे!

(गाती है)

स्वर्ग है नहीं दूसरा और।
सज्जन हृदय परम करुणामय यही एक है ठौर।
सुधा सलिल से मानस जिसका पूरित प्रेम विभोर।
नित्य कुसुम मय कल्पद्रुम की छाया है इस ओर॥
स्वर्ग है०—

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

स्थान—प्रकोष्ठ

(दीर्घकारायण और रानी शक्तिमती)

शक्तिमती—वाजिरा मगध-कन्या है। मेरा तो कुछ बस नहीं और तुम जानते हो कि मैं इस समय कोसल की कंगली से भी गई बीती हूँ। किन्तु कोसल के सेनापति कारायण का अप-मान करे, देखा तो......

कारायण—महादेवि! हम इधर के भी गए और उधर के भी गए। विरुद्धक को भी मुँह दिखाने लायक नहीं रहे और वाजिरा भी नहीं मिली।

शक्तिमती—मूर्ख! सुनो। जब मगध के युद्ध में मैंने तुम्हें संकेत किया था तब तुम मर्माहत बन गए थे, और हमारे बने-बनाए खेल को बिगाड़ दिया! अब सुनती हूँ कि वह बन्धन के हाथ से [illegible] हुआ है। [illegible] पता भी नहीं है।

कारायण—मैं विश्वास दिलाता हूँ कि कुमार विरुद्धक अभी जीवित हैं। वह शीघ्र [illegible] आवेंगे।

शक्तिमती—किन्तु तुम इतने डरपोक हो और अदूरदर्शी [illegible] हो, मैं ऐसा नहीं समझती थी। जिसने तुम्हारे मातुल का वध किया, उसी की सेवा करके अपने को धन्य समझ रहे हो! धिक्! मैं यदि जानती......

कारायण—बस बस रानी! अपने हृदय की ज्वाला का प्रदर्शन करके अपना गौरव, अपनी [illegible] न [illegible]।

शक्तिमती—क्या प्राणीमात्र में साम्य की घोषणा करनेवाले पुरुष ही हैं ? वे अपने समाज के आधे अङ्ग को इस तरह पद-दलित और पैर की धूलि समझे हुए हैं ! क्या उन्हें अन्तःकरण नहीं है ? क्या स्त्रियाँ अपना कुछ अस्तित्व नहीं रखतीं ? क्या उनके जन्मसिद्ध कोई अधिकार नहीं हैं ? क्या स्त्रियों का सब कुछ, पुरुषों की कृपा से मिली हुई भिक्षा मात्र है ? मुझे इस तरह पदच्युत करने का किसी को क्या अधिकार था ?

कारायण—स्त्रियों के संगठन में, उनके शारीरिक और प्राकृतिक विकास में ही एक परिवर्तन है—जो स्पष्ट बतलाता है कि वे शासन कर सकती हैं, किन्तु अपने हृदय पर। वे अधिकार जमा सकती हैं उन मनुष्यों पर—जिन्होंने समस्त विश्व पर अधिकार किया हो। वह मनुष्य पर राजरानी के समान एकाधिपत्य रख सकती हैं, तब उन्हें इस दुरभिसन्धि की क्या आवश्यकता है—जो केवल सदाचार और शांति को ही नहीं शिथिल करती, किन्तु उच्छृङ्खलता को भी आश्रय देती है !

शक्तिमती—फिर बार बार यह अवहेलना कैसी ? यह बहाना कैसा ? हमारी असमर्थता सूचित कराकर हमें और भी निर्मूल आशंकाओं में छोड़ देने की कुटिलता क्यों है ? क्या हम मनुष्य के समान नहीं हो सकतीं ? क्या चेष्टा करके हमारी स्वतंत्रता नहीं पददलित की गई है ? देखो, जब गौतम ने स्त्रियों को भी प्रव्रज्या लेने की आज्ञा दी, तब क्या वे ही सुकुमार स्त्रियाँ परिव्राजिका के कठोर व्रत को अपनी सुकुमार देह पर नहीं उठाने का प्रयास करतीं ?

कारायण—देवी ! किन्तु यह साम्य और परिव्राजिका होने की

विधि भी तो कहीं मनुष्यों में से किसी ने फैलाई है। स्वार्थत्याग के कारण वे उसकी घोषणा करने में समर्थ हुए, किन्तु समाज भर में न तो स्वार्थी स्त्रियों की कमी है न पुरुषों की। और, सब पद हृदय के हैं भी नहीं, फिर मनुष्य-समाज पर ही आक्षेप क्यों? जिसकी अन्तःकरण की वृत्तियों का विकास सदाचार का ध्यान करके होता है—उन्हीं को सत्ता कर्तव्य का रूप देती है। मेरी प्रार्थना है कि तुम भी उन स्वार्थी मनुष्यों की कोटि में मिलकर कलंक न बनो।

शक्तिमती—तब क्या करूँ?

मल्लिका—विश्वभर में सब कर्म सब के लिये नहीं हैं, इसमें कुछ विभाग है अवश्य। सूर्य अपना काम जलता-बलता हुआ करता है और चन्द्रमा उसी आलोक को शीतलता से फैलाता है। क्या उन दोनों में बदला हो सकता है? मनुष्य कठोर परिश्रम करके जीवन-संग्राम में प्रकृति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है। और वह स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्ति तथा सान्त्वना का अभय वरदहस्त का आश्रय, मानव-समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व-शासन की एकमात्र अधिकारिणी, प्रकृति-स्वरूपा स्त्रियों के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है। उसे छोड़कर असमर्थता, दुर्बलता प्रकट करके इस दौड़-धूप में क्यों पड़ती हो! स्त्रियों के शासन की सीमा विस्तृत है, और मनुष्य की संकीर्ण। कठोरता का उदाहरण है पुरुष, और कोमलता का विश्लेषण है—स्त्री जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है—जो, अन्तर्जगत्

का स्वतन्त्र विकास है जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं। इसीलिये प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मनमोहन आवरण दिया है, रमणी का रूप। संगठन और आधार भी वैसे ही हैं। उन्हें दुरुपयोग में न ले आओ। अहंकार की पाशववृत्ति—जिसका परिणाम कठोरता है—स्त्रियों के लिये तो क्या मनुष्य के लिये भी नहीं है। वह अनुकरणीय नहीं है, वह नियम का अपवाद है। उसे नारी जाति जिस दिन स्वीकृत कर लेगी, उस दिन समस्त सदाचारों में विप्लव होगा। फिर कैसी स्थिति होगी, यह कौन कह सकता है।

शक्तिमती—फिर क्या पदच्युत करके मैं अपमानित और पददलित नहीं की गई? क्या—यह ठीक था?

कारायण—पदच्युत होने का अनुभव करना भी एक दम्भमात्र है! देवी! एक स्वार्थी के लिये समाज दोषी नहीं हो सकता। क्या मल्लिकादेवी का उदाहरण कहीं दूर का है। वही लोलुप नरपिशाच हमारा और आपका स्वामी, कोशल का सम्राट् क्या क्या उनके साथ कर चुका है, यह क्या आप नहीं जानतीं? फिर भी उनकी सती सुलभ वास्तविकता देखिए और अपनी कृत्रिमता से तुलना कीजिए।

शक्तिमती—(सिर झुकाकर)—हाँ कारायण! यहाँ तो मुझे सिर झुकाना ही पड़ेगा।

कारायण—देवी! मैं एक दिन में इस कोशल को उलट-पलट देता, छत्र चमर लेकर हठात् विरुद्धक को सिंहासन पर बैठा देता, किन्तु मन के बिगड़ने पर भी मल्लिकादेवी का शासन

मुझे सुनने में नहीं आ गया! हम और आप देखेंगी कि शीघ्र ही कोशल के सिंहासन पर राजकुमार विरुद्धक बैठेंगे, पर आपकी मन्त्रणा के अनुकूल।

(विरुद्धक और मल्लिका का प्रवेश)

शक्तिमती—आर्ये मल्लिका को मैं अभिवादन करती हूँ।

कारायण—मैं नमस्कार करता हूँ।

(विरुद्धक अलग खड़ा हुआ है)

मल्लिका—शान्ति मिले, शिव कल्याण हो। बहिन, क्या अब भी राजकुमार को उत्तेजित करके यही मनुष्यता की सिद्धि सिखाने की चेष्टा करोगी? तुम रानी हो, तुम्हारा सम्मान आदर क्या तुम्हें दुर्विनीत अपमानित करता है? क्या इस विरुद्धक को देखकर तुम्हारी अन्तरात्मा लज्जित नहीं होती?

शक्तिमती—बड़ी भूल की देवी! क्षमा करना। वह तो उद्वेग था—प्रतिहिंसा की उत्तेजना थी।

मल्लिका—वासना, क्रूरता, अभिमान, दम्भ, क्रोध, करुणा, द्वेष, मोह इन्हीं संसार का मनोहर रूप है। रानी! स्त्री और पुरुष की बहुत भिन्नता दोनों के अधिकार हैं। स्त्रियों का कर्तव्य है कि पाशववृत्ति वाले क्रूर कर्मों को कोमल और करुणाप्लुत करें, कठोर पौरुष के अनन्तर उनके जिस अंश की आवश्यकता है—वह स्नेह, शीतलता, सहनशीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियों से ही लेना होगा। हमारा यह कर्तव्य है। उसे अवहेलना और उपेक्षा का आलंबन करके तुम अपने अधिकार से इनको वंचित न रखना चाहिये। जाओ, अपने स्वामी से क्षमा माँगो। तुम्हा

है कि अजात और वाजिरा का ब्याह होने वाला है। तुम भी उस उत्सव में अपने घर को सूना मत रखो। चलो।

शक्तिमती—आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है देवी!

कारायण—तो मैं आज्ञा चाहता हूँ। क्योंकि मुझे शीघ्र पहुँचना चाहिये। देखिये, वैतालिकों की वीणा बजने लगी। सम्भवतः महाराज शीघ्र ही सिंहासन पर आया चाहते हैं।—(राजकुमार विरुद्धक से)—राजकुमार! मैं आप से भी क्षमा चाहता हूँ, क्योंकि आप जिस विद्रोह के लिये मुझे आज्ञा दे गये थे मैं उसे करने में असमर्थ था—अपने राष्ट्र के विरुद्ध यदि आप अस्त्र ग्रहण न करते तो सम्भवतः मैं आपका अनुगामी हो जाता, क्योंकि मेरे हृदय में भी प्रतिहिंसा थी। किंतु वैसा नहीं हो सका। इसमें मेरा अपराध नहीं।

विरुद्धक—उदार सेनापति, मैं हृदय से तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। और स्वयं तुमसे क्षमा माँगता हूँ।

कारायण—मैं सेवक हूँ युवराज!

(जाता है)

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—कोशल की राजसभा

(आसन के पास में अजातशत्रु और वाजिरा तथा प्रसेनजित,
शक्तिमती, मल्लिका, विरुद्धक, वासवी और
कारायण का प्रवेश)

मल्लिका—बधाई है महाराज ! यह शुभसम्बन्ध आनन्दमय हो !

प्रसेन०—देवी ! आपकी असीम अनुकम्पा है, जो मेरे जैसे व्यक्ति पर इतना स्नेह ! मल्लिकादेवी, तुम धन्य हो !

मल्लिका—किन्तु महाराज ! मेरी एक प्रार्थना है।

प्रसेन०—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है भगवती !

मल्लिका—तुम आपकी पत्नी, परित्यक्ता शक्तिमती का क्या दोष है ? इस शुभ अवसर पर यह विचार करना यद्यपि ठीक नहीं है, तो भी ....

प्रसेन०—इसका प्रमाण तो यह स्वयं है। इसने क्या क्या नहीं किया—यह क्या किसी से छिपा है ?

मल्लिका—किन्तु इसके मूल कारण तो महाराज ही हैं। यह तो अनुकरण करती रही—जैसा राजा तथा प्रजा—[illegible] इसके अधिकार से [illegible] कारण हुआ [illegible] दिया करते हैं।

प्रसेन०—तो तुम्हारा क्या मत है देवी !

शक्तिमती—यह मेरा ही अपराध था [illegible] ! [illegible] किसी [illegible]—मैं अपने [illegible] पर [illegible]

हूँ। अब मेरी सेवा मुझे मिले, उससे मैं वञ्चित न होऊँ, यही मेरी प्रार्थना है।

प्रसेन०—(मल्लिका का मुँह देखता है)

मल्लिका—क्षमा करना ही होगा महाराज! और उसका बोझ मेरे सिर पर होगा। मुझे विश्वास है कि यह प्रार्थना निष्फल न होगी।

प्रसेन०—मैं उसे कैसे अस्वीकार कर सकता हूँ।

(शक्तिमती को हाथ पकड़ कर उठाता है, वह सिंहासन पर बैठती है)

मल्लिका—मैं कृतज्ञ हुई सम्राट्! क्षमा से बढ़कर दण्ड नहीं है, और आपकी राष्ट्रनीति इसी का अवलम्बन करे, मैं यही आशीर्वाद देती हूँ। किन्तु एक बात और भी है।

प्रसेन०—वह क्या है?

मल्लिका—मैं आज अपना सब बदला चुकाना चाहती हूँ; मेरा भी कुछ अभियोग है।

प्रसेन०—वह बड़ा भयानक है! देवि, उसे तो आप क्षमा कर चुकी हैं; अब!

मल्लिका—तब आप यह स्वीकार करते हैं कि भयानक अपराध भी क्षमा कराने का साहस मनुष्य को होता है।

प्रसेन०—विपन्न की यही आशा है। तब भी......

मल्लिका—तब भी ऐसा अपराध क्षमा किया जाता है, क्यों सम्राट्?

प्रसेन०—मैं क्या कहूँ? इसका उदाहरण तो मैं स्वयं हूँ देवी!

मल्लिका—तब यह राजकुमार विरुद्धक भी क्षमा का अधिकारी है।

प्रसेन०—किन्तु यह राष्ट्र का द्रोही है, क्यों धर्माधिकारी, इसका क्या दण्ड है?

धर्मा०—मृत्युदण्ड महाराज!

मल्लिका—राजन्! विद्रोही बनने के कारण भी आप ही हैं। आपके पर विरुद्धक राष्ट्र का एक सच्चा शुभचिन्तक हो सकता था। और इससे क्या, मैं तो स्वीकार कर चुकी हूँ कि अत्यन्त अपराध भी मार्जनीय होते हैं।

प्रसेन०—तब विरुद्धक को क्षमा किया जाय।

विरुद्धक—पिता, मेरा अपराध कौन क्षमा करेगा! विद्रोही को कौन ठिकाना देगा? मेरी आँखें लज्जा से ऊपर नहीं उठती हैं। मुझे राज्य नहीं चाहिए। चाहिए केवल आपकी क्षमा। पृथ्वी के साम्राज्य देखा! हे पिता! मुझ अपराधी पुत्र को क्षमा कीजिए।

(पैर पकड़ता है)

प्रसेन०—धर्माधिकरण! पिता का हृदय इतना सदय होता है कि जिसमें क्रोध का बड़ी देर नहीं रह सकता। मेरा पुत्र मुझसे क्षमा-भिक्षा माँगता है, धर्मशास्त्र के बल पर आप कहें तो, मैं इसे क्षमा कर दूँगा। क्योंकि न करने से मैं पिता नहीं रह सकता, मैं जीवित नहीं रह सकता।

धर्माधिकरण—किन्तु महाराज! न्यायालय का भी कुछ मान रखना चाहिए।

प्रसेन०—यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र है। किन्तु अपराध का अनु-

दंड, नहीं-नहीं, यह किसी सहृदय पिता का काम है। वत्स विरुद्धक! उठो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।

(विरुद्धक को उठाता है)

(बुद्ध का प्रवेश)

सब—भगवान के चरणों में प्रणाम।

गौतम—विनय और शील की रक्षा करने में सब दत्तचित्त रहें, जिससे प्रजा का कल्याण हो—करुणा की विजय हो। आज मुझे सन्तोष हुआ, कोशलनरेश! तुमने अपराधी को क्षमा करना सीख लिया, यह राष्ट्र के लिये कल्याण की बात हुई। फिर भी अभी तुम इसे त्याज्यपुत्र क्यों कह रहे हो?

प्रसेन०—महाराज यह दासी-पुत्र है। सिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता।

गौतम—यह दम्भ तुम्हारा प्राचीन संस्कार है। क्यों राजन्! क्या दास, दासी मनुष्य नहीं हैं? क्या कई पीढ़ी ऊपर तक तुम प्रमाण दे सकते हो कि सभी राजकुमारियों की सन्तान इस सिंहासन पर बैठी हैं, या प्रतिज्ञा करोगे कि कई पीढ़ी आने वाली तक दासीपुत्र इस पर न बैठने पावेंगे। यह छोटे-बड़े का भेद क्या अभी इस संकीर्ण हृदय में इस तरह घुसा है कि नहीं निकल सकता? क्या जीवन की वर्तमान स्थिति देखकर प्राचीन अन्ध विश्वासों को, जो न जाने किस कारण होते आए हैं, तुम बदलने के लिए प्रस्तुत नहीं हो? क्या इस क्षणिक भव में तुम अपनी स्वतन्त्र सत्ता अनन्तकाल तक बनाए रखोगे? और भी क्या उस आर्यपद्धति को तुम भूल गए कि पिता से पुत्र की गणना होती है? राजन्.

सावधान हो, इस अपनी सुयोग्य शक्ति को स्वयं कुण्ठित न बनाओ, यद्यपि इसने कपिलवस्तु में निरीह प्राणियों का वध करके बड़ा अत्याचार किया है और बालकपनवश क्रूरता भी यह सब करने लगा था, किन्तु अब इसका हृदय देवी मल्लिका की कृपा से शुद्ध हो गया है। इसे तुम युवराज बनाओ।

सब—धन्य है! धन्य है!!

प्रसेन०—जब ऐसी आज्ञा—इस व्यवस्था का कौन अतिक्रमण कर सकता है, और यह मेरी प्रसन्नता का कारण भी होगा। प्रभु, आपकी कृपा से मैं आज सर्वसम्पन्न हुआ। और क्या आज्ञा है?

गौतम—कुछ नहीं। तुम लोग कर्तव्य के लिये सत्ता के अधिकारी बनाये गये हो, उसका दुरुपयोग न करो। सुशासन का प्रेम का, करुणा का, क्षमा का शासन फैलाओ। प्राणीमात्र में सहानुभूति को विस्तृत करो। इन क्षुद्र विग्रहों से ऊँचे उठ कर अपने कर्तव्य से च्युत न हो जाओ।

प्रसेन०—जैसी आज्ञा। यही होगा।

(अजातशत्रु उठकर विरुद्धक को गले लगाते हैं)

अजात०—भाई विरुद्धक, मैं तुमसे ईर्ष्या कर रहा हूँ।

विरुद्धक—और मैं कब दिन सोच बैठा था कि तुम भी इसी तरह अपने पिता से क्षमा किये जाओगे।

अजात०—तुम्हारी वाणी सत्य हो।

बाजिरा—क्यों विरुद्धक! मुझे क्या भूल गये? क्या ऐसा कौन अपराध है जो मुझसे नहीं बोलते हो।

विरुद्धक—नहीं, नहीं, मैं तुमसे लज्जित हूँ। मैं तुम्हें सदैव द्वेष की दृष्टि से देखा करता था, उसके लिये तुम मुझे क्षमा करो।

वाजिरा—नहीं भाई! यही तो तुम्हारा अत्याचार है।

(सब जाते हैं)

वासवी—(स्वगत)—अहा! जो हृदय विकसित होने के लिये है, जो मुख हँस कर स्नेह-सहित बात करने के लिये है, उसे लोग कैसा बिगाड़ते हैं। भाई प्रसेन, तुम अपने जीवन-भर में इतने प्रसन्न कभी न हुए होगे, जितने आज। कुटुम्ब के प्राणियों में स्नेह का प्रचार करके मानव इतना सुखी होता है, यह आज ही मालूम हुआ होगा। भगवान, क्या कभी वह भी दिन आवेगा, जब विश्वभर में एक कुटुम्ब स्थापित हो जायगा—मानव मात्र स्नेह से अपनी गृहस्थी सम्हालेंगे।

(जाती है)

(पट-परिवर्तन)

छठवाँ दृश्य

स्थान—पथ

(वार्तालाप करते हुए दो नागरिक)

पहिला—किसी ने भी शांति का ऐसा परिचय दिया है? महत्वाकांक्षा का कैसा भयंकर प्रमाद—ओह!

दूसरा—देवदत्त का लोकनिंद्य परिणाम देखकर मुझे तो आश्चर्य हो गया। जो एक स्वतंत्र संघ स्थापित करना चाहते थे उन्हीं की यह दशा.....

पहिला—जब भगवान से भिक्षुओं ने कहा कि, देवदत्त आपका प्राण लेने आ रहा है, उसे रोकना चाहिये......

दूसरा—तब, तब?

पहिला—तब उन्होंने केवल यही कहा कि घबराओ नहीं, देवदत्त मेरा कुछ अनिष्ट नहीं कर सकेगा। वह मेरे पास नहीं आ सकता। उसमें इतनी शक्ति नहीं, क्योंकि उसमें द्वेष है।

दूसरा—फिर क्या हुआ?

पहिला—यही कि देवदत्त समीप आने पर [illegible] के [illegible] जब [illegible] में [illegible]। क्या नहीं था मालूम कि [illegible] का हुआ—[illegible] [illegible] के [illegible] कि उसमें [illegible] ही [illegible] का [illegible] कर गौ। वह फिर [illegible] में दिखाई पड़ा।

दूसरा—आश्चर्य! गौतम की अलौकिक शक्ति है। अहो, इतना [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। केवल [illegible] [illegible] से [illegible] हुआ है। चलो—वह [illegible]

स्निग्ध गम्भीर दृष्टि, किसको नहीं आकर्षित करती। कैसा विलक्षण प्रभाव है!

पहिला—जभी तो बड़े-बड़े सम्राट लोग विनत होकर उनकी आज्ञा पालन करते हैं। देखो यह भी कभी हो सकता था कि राजकुमार विरुद्धक पुनः युवराज बनाये जावें। भगवान ने समझा कर महाराज को ठीक कर ही दिया—और वे आनन्द से युवराज बना दिये गये।

दूसरा—हाँ जी चलो, आज तो श्रावस्ती-भर में महोत्सव है! हम लोग भी घूम-घूम कर आनन्द लें।

पहिला—श्रावस्ती पर से आतंक का मेघ टल गया, अब तो आनन्द-ही-आनन्द है। इधर राजकुमारी का ब्याह भी मगधराज से हो गया। अब युद्ध-विग्रह तो कुछ दिनों के लिये शान्त हुए। चलो हम लोग भी महोत्सव में सम्मिलित हों।

(एक ओर से दोनों जाते हैं, दूसरी ओर से वसन्तक का प्रवेश—)

वसन्तक—फटी हुई बाँसुली भी कहीं बजती है! एक कहावत है कि "रहे मोची के मोची।" यह सब ग्रहों की गड़बड़ी है। ये एक बार ही इतना बड़ा काण्ड उपस्थित कर देते हैं। कहाँ साधारण भाग्यवाला! हो गई थी राजरानी! मैं देख आया। वही मालिन ही तो है। अब आम की बारी लेकर बेचा करती है और लड़कों के ढेले खाया करती है। ब्रह्मा भी कभी भोजन करने के पहिले मेरी ही तरह भाँग पी लेते होंगे, तभी तो ऐसा उलटफेर...ऐं, किंतु, परन्तु, तथापि वही कहावत 'पुनर्मूषिको भव'! एक चूहेको किसी ऋषि ने दया करके शेर बनाया, वह उन्हीं पर गुर्राने लगा।

जब मरने लगा तो झट से बाबाजी बोले 'पुनर्मूषिको भव', जा बच्चा फिर चूहा बन जा। और वह रह गये झोपड़ी के कोने में। महादेवी वासवदत्ता को यह समाचार चलकर सुनाऊँगा। हमने तो उसे पहिचान लिया, है जासूस नहीं। अरे इसीके फेर में मुझे देर हो गई। महाराजने वैवाहिक उपहार भेजे थे, सो अब तो पीछे पड़ गये। लड्डू मिलेंगे। अजी बाबा होगा तो क्या—मिलेंगे तो—चलूँ। किन्तु, नगर में तो आलोक-माला दिखाई देती है। सम्भवतः वैवाहिक महोत्सवका अभी अन्त नहीं हुआ, तो चलें।

(अंक ५)

(पट-परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

स्थान—आम्रकानन

(अकेली मागन्धी)

मागन्धी—(आप ही आप)—वाह री नियति ! कैसे-कैसे दृश्य देखने में आये—कभी बैलों को चारा देते-देते हाथ नहीं थकते थे, कभी अपने हाथ से जल का पात्र तक उठा कर पीने में संकोच होता था, कभी शील का बोझ एक पैर भी महल के बाहर चलने में रोकता था और कभी निर्लज्ज गणिका का आमोद मनोनीत हुआ ! इस बुद्धिमत्ता का कहीं ठिकाना है । वास्तविक रूप के परिवर्तन की इच्छा मुझे इतनी विषमता में ले आई । अपनी परिस्थिति को संयम में न रख कर व्यर्थ महत्व का ढोंग मेरे हृदय ने किया, काल्पनिक सुख-लिप्सा ही में पड़ी—उसी का यह परिणाम है । स्त्री-सुलभ एक स्निग्धता, सरलता की मात्रा कम हो जाने से जीवन में कैसे बनावटी भाव आ गये ! जो अब केवल एक संकोचदायिनी स्मृति के रूप में अवशिष्ट रह गये ।

(गान)

स्वजन दीखता न विश्व में अब, न मित्र अपना दिखाय कोई ।
पड़ी अकेली विकल रो रही, न दुःख में है सहाय कोई ॥
पलट गये दिन सनेह वाले, नशा न अब वो रही न गर्मी ।
न नींद सुख की, न रंगरलियाँ, न सेज उजली बिछाय सोई ॥

कहीं न कुछ दुःख [illegible] बिन भी, [illegible] [illegible] [illegible] गर्व जो था ।
[illegible] [illegible] [illegible] नहीं है, [illegible] [illegible] [illegible] होई ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] [illegible] न [illegible] कोई ॥

([illegible] देख कर हाथ जोड़ती है, बुद्ध का प्रवेश—)

(सिर पर हाथ रखते हैं)

गौतम—[illegible] ! सुखी रहो !

[illegible]—([illegible] [illegible] कर और पैर पकड़ कर)—प्रभु [illegible] [illegible] ! इस [illegible] हृदय की [illegible] [illegible] को [illegible] ने [illegible] [illegible] [illegible] ! इस [illegible] में [illegible] [illegible] ।

गौतम—[illegible] तुम्हें [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] तुम्हारा हृदय [illegible] [illegible] है था, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी ।

[illegible]—प्रभु ! मैं [illegible] नहीं, केवल [illegible] [illegible] की [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । मुझे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

गौतम—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] ! [illegible] तुम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

पड़ेगा। उठो, असंख्य आहें तुम्हारे प्रयोग से अट्टहास में परिणत हो सकती हैं।

मागन्धी—अन्त में मेरी विजय हुई नाथ! मैंने अपने जीवन के प्रथम वेग में ही आपको पाने का प्रयास किया था। किन्तु वह समय नहीं था, वह ठीक भी नहीं था। आज मैं अपने स्वामी को, अपने नाथ को, अपना कर धन्य हो रही हूँ।

गौतम—मागन्धी! अब उन अतीत के विकारों को क्यों स्मरण करती है; निर्मल हो जा!

मागन्धी—प्रभु, मैं नारी हूँ, जीवन-भर असफल होती आई हूँ। मुझे इस विचार के सुख से न वञ्चित कीजिये। नाथ! जन्म-भर के पराजय में भी आज मेरी ही विजय हुई! पतितपावन! यह उद्धार आपके लिये भी महत्त्व देनेवाला है और मुझे तो सब कुछ।

गौतम—अच्छा आम्रपाली! कुछ खिलाओगी?

मागन्धी—(आम की टोकरी लाकर रखती हुई)—प्रभु! अब इस आम्र-कानन की मुझे आवश्यकता नहीं, यह संघ को समर्पित है।

(संघ का प्रवेश)

संघ—जय हो, अमिताभ की जय हो! बुद्धं शरणं...

मागन्धी—गच्छामि।

गौतम—संघं शरणं गच्छामि।

सब मिलकर—धर्म शरणं गच्छामि।

(पट-परिवर्तन)

आठवाँ दृश्य

स्थान—प्रकोष्ठ

(वासवी और छलना)

छलना—देवी! तुम बड़ी हो, मैं बुद्धि में तुमसे छोटी हूँ। मैंने तुम्हारा अनादर करके तुम्हें भी दुःख दिया और अपने पथ पर चल कर स्वयं भी दुःखी हुई।

वासवी—नहीं, मुझे लज्जित न करो! तुम, क्या मेरी माँ नहीं हो? हाँ, भाभी के बच्चा हुआ है। अहा, कैसा सुन्दर नन्हा-सा बच्चा है?

छलना—वासवी! तुम और अजात सहोदर भाई-बहिन हो, मैं तो सचमुच एक बाहरी हूँ। [illegible] क्या मेरा अपराध क्षमा कर दोगी?

([illegible] का प्रवेश)

छलना—(पैर पर गिर कर)—कुणीक की दुःखी जननी [illegible] हो। मुझे [illegible] था।

[illegible]—[illegible] मैं तुम्हारी हूँ क्या मेरा अपराध क्षमा है?

वासवी—(मुस्कुरा कर)—अभी नहीं, इसने कुणीक को क्षमा करके मुझे बड़ा सुख दिया, जिसका इस छोटी-सी हृदय में मैं [illegible] नहीं कर सकती; इसलिये मैं इसे क्षमा नहीं करूँगी।

छलना—(हँसकर)—तब तो बहिन मैं भी तुम्हें [illegible] करूँगी। क्योंकि [illegible] तुम [illegible] करके मुझे [illegible] का [illegible] है। [illegible]

का काम तो तुम्हीं ने कर दिखाया। पति को तो वश में किया ही था, मेरे पुत्र को भी अपनी गोद में ले लिया। मैं……

वासवी—छलना! तू नहीं जानती, मुझे एक बच्चे की आवश्यकता थी, इसलिये तुझे नौकर रख लिया था—अब तो तेरा काम नहीं है।

छलना—बहिन इतनी कठोर न हो जाओ।

वासवी—(हँसती हुई)—अच्छा जा, मैंने तुझे अपने बच्चे की धात्री बना दिया। देखो, अबकी अपना काम ठीक से करना, नहीं तो फिर………

छलना—(हाथ जोड़कर)—अच्छा स्वामिनी!

पद्मा०—क्यों माँ! अजात तो यहाँ अभी नहीं आया। वह क्या छोटी माँ के पास नहीं आवेगा?

वासवी—पद्मा! जब उसे पुत्र हुआ तब उससे कैसे रहा जाता। वह सीधा श्रावस्ती से महाराज के मन्दिर में गया है। सन्तान उत्पन्न होने पर अब उसे पिता के स्नेह का मोल समझ पड़ा है।

छलना—बेटी! पद्मा! चल। इसीसे कहते हैं कि काठ की सौत भी बुरी होती है। देखो निर्दयता—अजात को यहाँ न आने दिया।

वासवी—चल, चल, तुझे तेरा पति भी दिला दूं बच्चा भी। यहाँ बैठकर मुझसे लड़ मत कंगालिन!

(सब हँसती हुई जाती हैं)

(पट-परिवर्तन)

नवाँ दृश्य

स्थान—महाराज बिम्बसार का कुटीर

(बिम्बसार बैठे हुए हैं)

(नेपथ्य से गान)

चल वसन्त बाला अंचल से किस घातक सौरभ से मस्त,
आती मलयानिल की लहरें जब दिनकर होता है अस्त।
मधुकर से कर संधि, विचर कर उषा नदी के तट उस पार,
चूसा रस पत्तों पत्तों से फूलों का दे लोभ अपार।
लगे रहे जो अभी डाल से बने आवरण फूलों के,
अवयव थे शृंगार रहे जो वनबाला के झूलों के।
आशा देकर चले जा रहे वे फिर हँसते थे,
कभी सिकुड़ना सकुचाना भी जिनका सहना सीखे थे।
कुम्हलाए, सूखे, ऐंठे, फिर गिरे अलग हो वृन्तों से,
वे निरीह मर्माहत होकर कुसुमाकर के कुन्तों से।
नवपल्लव का सृजन ! तुच्छ है किया बात से वध जब क्रूर,
और कुमुदिनी हिलने दे ? वे सर्वस्व से भी अब दूर।
किया हुआ अपनी अवगति से हम निर्दयता का संहार,
तू अब 'अब' नहीं सुनेगी उनके अतीतों के बाग।

बिम्बसार—(उठ कर आप ही आप)—सन्ध्या का समीर ऐसा चल रहा है—जैसे दिन भर का थका हुआ पथिक संसार एक शीतल विश्राम छोड़ कर फिर अपनी यात्रा कर रहा है। प्रकृति की शान्तिमयी मूर्ति निश्चल होकर भी एक मधुर आलोक से दिप जाती है। मधुर दृश्य में मन रहता है, सब चंचल है। किस पर ध्येय

से भैरव-हुङ्कार करता है, उसी पर स्नेह का अभिषेक करने के लिये प्रस्तुत रहता है। उन्माद! और क्या? मनुष्य क्या इस पागल विश्व के शासन से अलग होकर कभी निश्चेष्टता नहीं ग्रहण कर सकता? जीवन की शालीनता नहीं धारण कर सकता? हाय-रे मानव, क्यों इतनी दुरभिलाषाएँ बिजली की तरह तू अपने हृदय में आलोकित करता है, क्या निर्मल ज्योति तारागण की मधुर किरणों के सदृश सद्वृत्तियों का विकास तुम्हें नहीं रुचता! भयानक भावुकता, उद्वेगजनक अन्तःकरण लेकर क्यों तू व्यग्र हो रहा है? किसे अपने इस बोझ से दबावेगा? जीवन की शान्तिमयी सच्ची परिस्थिति को छोड़कर व्यर्थ के अभिमान में तू कब तक पड़ा रहेगा? यदि मैं सम्राट् न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलयों के झुरमुट में एक अधखिला फूल होता और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती—पवन की किसी लहर को सुरभित करके धीरे से उस थाले में चू पड़ता—तो इतना भीषण चीत्कार इस विश्व में न मचता। उस अस्तित्व को अनस्तित्व के साथ मिलाकर कितना सुखी होता! भगवान, अनन्त ठोकरें खाकर लुढ़कते हुए जड़ ग्रहपिण्डों से भी तो इस चेतन मानव की बुरी गत है! धक्के-पर-धक्के खाकर यह निर्लज्ज सभा से नहीं निकलना चाहता। कैसी विचित्रता है। अहा! वासवी भी नहीं है। कब तक आवेगी।

जीवक—(प्रवेश करके)—सम्राट्!

बिम्बसार—चुप! यदि मेरा नाम न जानते हो तो मनुष्य कह कर पुकारो। यह भयानक सम्बोधन मुझे न चाहिए!

नवाँ दृश्य

स्थान—महाराज बिम्बसार का कुटीर

(बिम्बसार बैठे हुए हैं)

(नेपथ्य से गान)

चल बसन्त बाला अंचल से किस घातक सौरभ से मस्त,
आती मलयानिल की लहरें जब दिनकर होता है अस्त।
मधुकर से कर सन्धि, विचर कर उषा नदी के तट उस पार,
चूसा रस पत्तों पत्तों से फूलों का दे लोभ अपार।
लगे रहे जो अभी डाल से बने आवरण फूलों के,
अवयव थे शृङ्गार रहे जो वनबाला के झूलों के।
आशा देकर चले जाते थे फिर ठहरे थे,
कहीं हिमानी बरसाती थी किरणा उड़ाती खींचे वे;
कुम्हलाए, सूखे, ऐंठे, फिर गिरे अलग हो वृन्तों से,
वे निरीह मर्माहत होकर कुसुमाकर के कुन्तों से।
नव पल्लव का सृजन! तुच्छ है किया बात से वध जब क्रूर,
कौन फूल-सा हिलता देखे? वे अतीत से भी जब दूर।
लिखा हुआ उनकी नस-नस में इस निर्दयता का इतिहास,
तू अब 'आह' बनी घूमेगी उनके अवशेषों के पास।

बिम्बसार—([illegible])—[illegible] देखा जा रहा है—जैसे दिन भर का थका हुआ [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है। [illegible]

छलना—(प्रवेश करके चरण पकड़ती है)—नाथ ! मुझे निश्चय हुआ कि वह मेरी उद्दण्डता थी । वह मेरी कूट-चातुरी थी, दम्भ का प्रकोप था । नारी-जीवन के स्वर्ग से मैं वञ्चित कर दी गई । ईंट-पत्थरों के महलरूपी बन्दीगृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी । दण्डनायक ! मेरे शासक ! क्यों न उसी समय, शील और विनय के नियम भङ्ग करने के अपराध में मुझे आपने दण्ड दिया ! क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम की यंत्रणा के गर्त में मुझे डाल दिया है, वह मैं भोग चुकी । अब उबारिये !

बिम्बसार—छलना दण्ड देना मेरी सामर्थ्य के बाहर था । अब देखूं कि क्षमा करना भी मेरे सामर्थ्य में है कि नहीं !

वासवी—(प्रवेश करके)—आर्यपुत्र ! अब मैंने इसको दण्ड दे दिया है, यह मातृत्व पद से च्युत की गई है, अब इसको आपके पौत्र की धात्री का पद मिला है । एक राजमाता को इतना बड़ा दण्ड कम नहीं है । अब आपको क्षमा करना ही होगा ।

बिम्बसार—वासवी ! तुम मानवी हो कि देवी ?

वासवी—बता दूँ ! मैं मगध के सम्राट् की राजमहिषी हूँ । और, यह छलना मगध के राजपौत्र की धाई है, और यह कुणीक मेरा बचा इस मगध का युवराज है और आपको भी........

बिम्बसार—मैं अच्छी तरह अपने को जानता हूँ वासवी !

वासवी—क्या ?

बिम्बसार—कि मैं मनुष्य हूँ और इन मायाविनी हाथ का खिलौना हूँ ।

दौवारिक—वे रथ द्वार पर आए हैं, और राजकुमार कुणीक भी आ रहे हैं।

बिम्बसार—कुणीक कौन! मेरा पुत्र, या मगध का सम्राट् अजातशत्रु?

अजातशत्रु—(प्रवेश करके)—पिता! आपका पुत्र, यह कुणीक सेवा में प्रस्तुत है।—(पैर पकड़ता है)

बिम्बसार—नहीं, नहीं, मगधराज अजातशत्रु को सिंहासन की मर्यादा नहीं भंग करनी चाहिए। मेरे दुर्बल चरण—आह, छोड़ दो।

अजातशत्रु—नहीं पिता। पुत्र का यही सिंहासन है। आपने मुझे सोने का सिंहासन देकर इस स्वर्ग अधिकार से वंचित किया। क्या अपने पुत्र को भी कोई क्षमा करता है?

बिम्बसार—पिता। किन्तु, वह पुत्र को क्षमा करता है। सम्राट् को क्षमा करने का अधिकार पिता को कहाँ!

अजातशत्रु—नहीं पिता, मुझे भ्रम हो गया था। मुझे अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी। मिला था केवल जंगलीपन की स्वतन्त्रता का अभिमान। अपने को विश्व भर से स्वतन्त्र जीव समझने का मूर्ख आत्मसम्मान।

बिम्बसार—वह भी तो तुम्हारे गुरुजन की ही दी हुई शिक्षा थी। तुम्हारी माँ थी—छलना।

अजातशत्रु—वह केवल मेरी माँ थी—यह [illegible] अब [illegible] पिता की [illegible]—पिता! तुम्हारे [illegible] अपनी ही होंगी।

छलना—(प्रवेश करके चरण पकड़ती है)—नाथ ! मुझे निश्चय हुआ कि वह मेरी उद्दण्डता थी। यह मेरी क्रूर-चातुरी थी, दम्भ का प्रकोप था। नारी-जीवन के स्वर्ग से मैं वञ्चित कर दी गई। ईर्ष्या-सागरों के महलरूपी बन्दीगृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी। दण्डनायक ! मेरे शासक ! क्यों न उसी समय, शील और विनय के नियम भङ्ग करने के अपराध में मुझे आपने दण्ड दिया ! क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम की यंत्रणा के गर्त में मुझे डाल दिया है, वह मैं भोग चुकी। अब उबारिये !

बिम्बसार—छलना दण्ड देना मेरी सामर्थ्य के बाहर था। अब देखूं कि क्षमा करना भी मेरे सामर्थ्य में है कि नहीं !

वासवी—(प्रवेश करके)—आर्यपुत्र ! अब मैंने इसको दण्ड दे दिया है, यह मातृत्व पद से च्युत की गई है, अब इसको आपके पौत्र की धात्री का पद मिला है। एक राजमाता को इतना बड़ा दण्ड कम नहीं है। अब आपको क्षमा करना ही होगा।

बिम्बसार—वासवी ! तुम मानवी हो कि देवी ?

वासवी—बता दूँ ! मैं मगध के सम्राट् की राजमहिषी हूँ। और, यह छलना मगध के राजपौत्र की धाई है, और यह कुणीक मेरा बच्चा इस मगध का युवराज है और आपको भी........

बिम्बसार—मैं अच्छी तरह अपने को जानता हूँ वासवी !

वासवी—क्या ?

बिम्बसार—कि मैं मनुष्य हूँ और इन मायाविनी स्त्रियों के हाथ का खिलौना हूँ।

वासवी—तब तो महाराज मैं जैसा कहती हूँ वैसा ही कीजिये। नहीं तो आपको छोड़कर मैं नहीं [illegible]।

बिम्बसार—तो तुम्हारी विजय हुई वासवी! क्यों अजात! पुत्र होने पर पिता के स्नेह का गौरव तुम्हें विदित हुआ—कैसी [illegible] हुई!

कुणीक—(लज्जित होकर सिर झुका लेता है)

पद्मा०—(प्रवेश करके)—पिताजी, मुझे बहुत दिनों से आपने कुछ नहीं दिया है, पौत्र होने के उपलक्ष में तो मुझे कुछ [illegible] दीजिये, नहीं तो मैं उपद्रव मचाकर इस कुटी को [illegible]।

बिम्बसार—बेटी पद्मा! अहा तू भी आ गई।

पद्मा०—हाँ पिताजी! वह भी आई है। क्या मैं वहीं से [illegible]?

वासवी—चल पगली! मेरी भोली-भाली बहू! इस तरह क्या [illegible]—[illegible] देखना तो नहीं चाहे।

बिम्बसार—कुछ लाने से अच्छा मुझे आश्चर्य से [illegible] दिया। [illegible] भी पकड़ा जाता है!

पद्मा०—तो फिर मुझे पुरस्कार दीजिये।

बिम्बसार—क्या लेगी?

पद्मा०—[illegible], छलना को, क्षमा कर दीजिये। [illegible] है। फिर...

बिम्बसार—[illegible] पद्मा! [illegible] मेरी [illegible]। [illegible] है [illegible] पुत्र का स्नेह—

केवल क्षमा—माँगने पर भी नहीं दूँगा ! तुम्हारे लिये यह क्रोड सदैव खुला है । उठो इतना सुख भी। (अजातशत्रु को गले लगाता है)

पद्मा०—अब मेरी बारी !

बिम्बसार—हाँ वह भी......

पद्मा०—चल कर मगध के नवीन राजकुमार को एक स्नेह-चुम्बन आशीर्वाद के साथ दीजिये ।

बिम्बसार—तो फिर शीघ्र चलो—(उठकर गिर पड़ता है)—ओह ! इतना सुख एक साथ मैं सहन नहीं कर सकूँगा ! तुम सब बहुत देर को आये ! (काँपता है)

(गौतम का प्रवेश, अभय हाथ उठाते हैं)

(आलोक के साथ यवनिका-पतन)

इति शम्